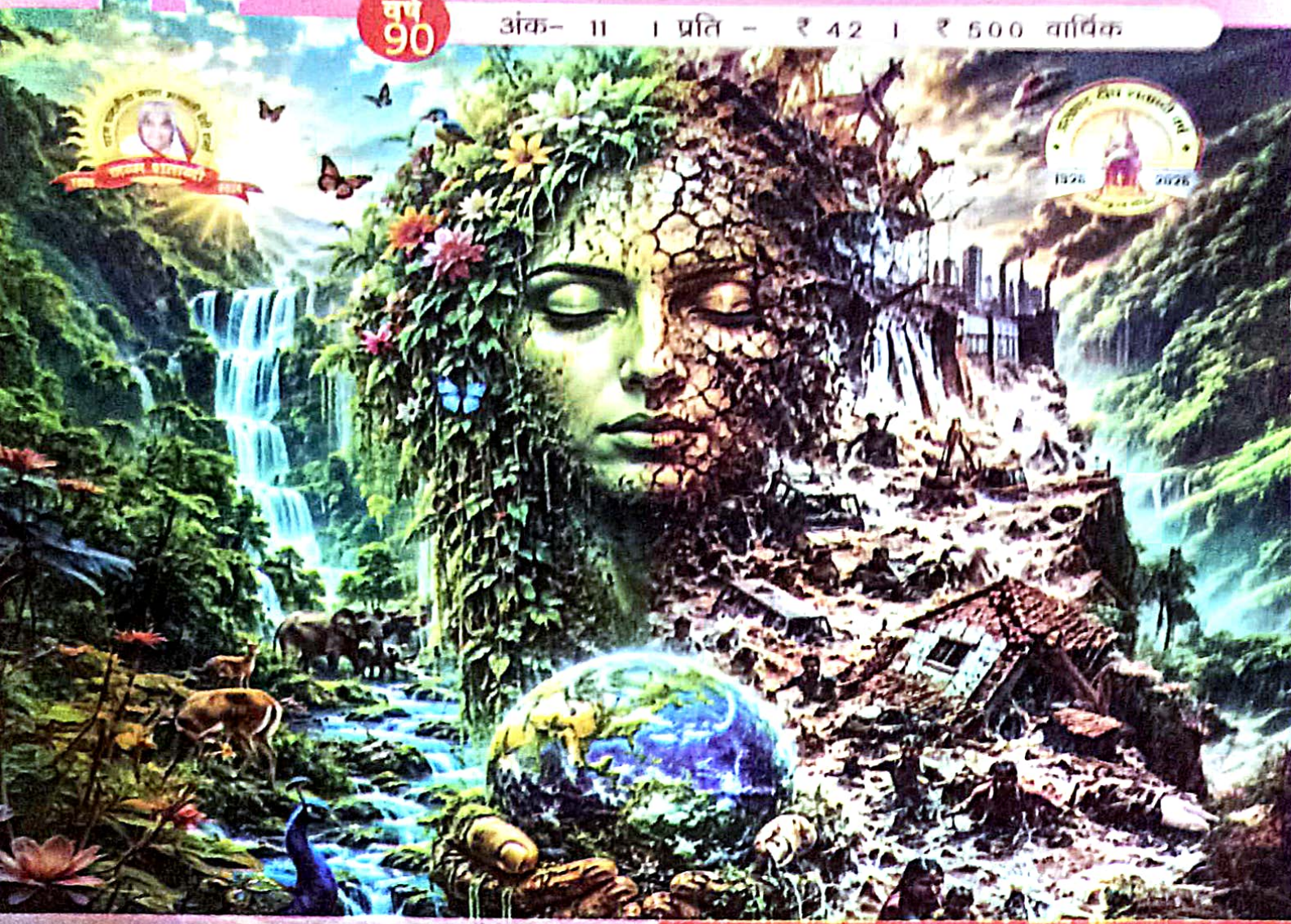
नवंबर
2026

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 90 | अंक- 11 | प्रति - ₹ 42 | ₹ 500 वार्षिक



9 ▶ मनुष्य का सच्चा स्वरूप
42 ▶ मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी
30 ▶ मानवता को प्रकृति के संकेत
57 ▶ परिवर्तन के महान क्षण



75 वर्ष पूर्व अखण्ड ज्योति



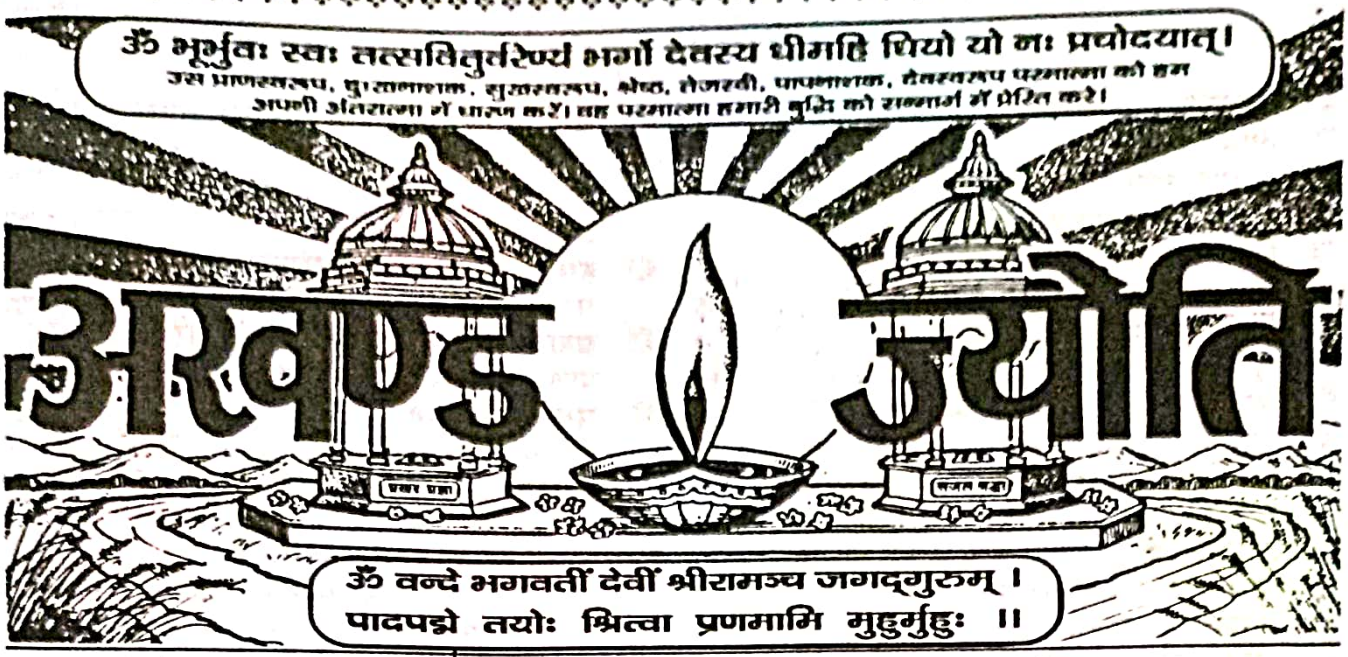
गायत्री के द्वारा आंतरिक कायाकल्प

जब हम दोषारोपण की दृष्टि से दुनिया को देखते हैं तो हरेक में ढेरों बुराइयाँ मालूम पड़ती हैं, लगता है कि सभी लोग अपने शत्रु हैं,पर जब दूसरे प्रकार सोचना आरंभ करते हैं और देखें कि किसने कब-कब,कितना-कितना उपकार हमारे ऊपर किया है,तो मालूम पड़ता है कि अपने ऊपर दूसरों की सेवा-सहायता का इतना भार लदा हुआ है कि उससे सिर उठाना मुश्किल है। पत्नी में कोई एक दोष हो तो लोग उसकी सारी सेवाओं को धूलि में मिलाकर केवल उसे पापों की पुतली ही समझने लगते हैं। माता-पिता कोई कटु बात कह दें तो उनकी सारी सेवाओं को भुलाकर लड़के उन पर आगववूला हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य स्वजन-संबंधियों- मित्रों या सत्पुरुषों की एक बुराई को लोग बहुत बढ़ा-चढ़ाकर अपने मन में दुर्भाव बढ़ाते रहते हैं , और उनकी अनेकों अच्छाइयों को भुला देते हैं। जितने ध्यानपूर्वक हम दूसरों की बुराइयों को देखते रहते हैं,उनकी भूल से दुःखी होते हैं,उसकी अपेक्षा यदि उतने ही ध्यानपूर्वक उनकी अच्छाइयों को देखें तो प्रतीत होगा कि चारों ओर से हमारे ऊपर प्रेम, वात्सल्य, सहयोग,सद्भावना एवं कृपा की वर्षा हो रही है।

किसी एक वस्तु का अभाव रहता है तो लोग ईश्वर को कोसते हैं। पर उसकी उन अनंत कृपाओं को नहीं गिनते,जो पग-पग पर उपलब्ध होती रहती हैं।कोई आपत्ति आती है तो उसके दुःख को तो देखते हैं, पर यह नहीं देखते कि इसके कारण हमें कितनी बहुमूल्य नसीहत मिलेगी तथा प्रारब्ध का कितना बोझ हलका हो जाएगा। ईश्वर अत्यंत दयालु है,वह द्वेषवश या निष्ठुर होकर हमें कोई कष्ट नहीं देता, वरन जिस प्रकार हमारा अत्यंत हित और दूरवर्ती लाभ देखता है, वैसा ही आयोजन करता है, भले ही वह कष्टप्रद एवं असुविधाजनक हो।

(अखण्ड ज्योति, नवंबर-1951, पृष्ठ -3)





संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ. प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड
जयसिंहपुरा, मथुरा (281 003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036,
7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
व्हाट्सएप नं. 9927086290 (केवल मेसेज करें)
वर्ष : 90
अंक : 11
नवंबर : 2026
कार्तिक-मार्गशीर्ष : 2083
प्रकाशन तिथि : 01.10.2026
वार्षिक चंदा
भारत में ट्रेकेबिल सुविधा सहित : 500/-
विदेश में हवाई डाक से : 5200/-

करिष्ये वचनं तव
शिष्यों की सामूहिक साधना (क्रमशः)

'करिष्ये वचनं तव'—शिष्यों की सामूहिक साधना का सूत्र बन गया। कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में कभी बीते युग में पार्थ ने अपने सारथी को यह वचन दिया था। यह वचन गीता के संपूर्ण ज्ञान के श्रवण का सुफल था। जीवन के संपूर्ण संशय, भ्रम मिट जाने के बाद की गई प्रतिज्ञा थी। इस प्रतिज्ञा के परिणाम में युग परिवर्तन हुआ। धर्मराज के धर्मराज्य की स्थापना हुई। युग बीता, परिस्थितियाँ बदलीं—पार्थ सारथी फिर से युगावतार बनकर युग-परिवर्तन के लिए आए। उन्होंने समय के रथ पर बैठकर हम सभी के जीवन की डोर थामी। हम सबसे युग-परिवर्तन के महाकार्य में सम्मिलित होने का आह्वान किया। जब हमने बहाने बनाए, हमारे मन में अनेकों संदेह-भ्रम उठ खड़े हुए; तब उन्होंने नए युग की नई गीता हमें सुनाई। उनके सभी प्रवचन, सारा लेखन नए युग की नई गीता ही तो है। हमें सोते-से जगाया, आलस्य से उठाया। कभी प्यार और मनुहार से, तो कभी थोड़ी डाँट और फटकार से। अपने युगसाहित्य से उन्होंने युग-बोध का वातावरण तैयार किया। उनके प्रेम के सूत्र में हम सबके जीवन कब पिरो दिए गए, हमें पता भी नहीं चला। हममें से कुछ ने उनके सामने, तो कुछ ने उनके न रहने पर उन्हें वचन दिया था—**'करिष्ये वचनं तव'**। उन्हें दिया गया वचन अब हमारा जीवन सूत्र है, साधना सूत्र है। 'करिष्ये वचनं तव' कहकर हमने उन्हें वचन दिया है कि हम सब आपकी हर बात मानेंगे। हमने इसे यथासंभव निभाया भी है। यदि हममें से किसी को वर्ष 1986 ई. की गुरुपूर्णिमा पर्व पर प्रवचन हाल में दिए गए उनके प्रवचन की याद हो तो उन्होंने अपने प्रवचन में हम सबसे यही आश्वासन माँगा था। नीचे उतरकर दिया गया यह उनका अंतिम प्रवचन था। उनके इस प्रवचन के उत्तर में हम सबके दिए वचन और उसकी पूर्ति में की गई सामूहिक साधना से इस मिशन का विश्वव्यापी विस्तार बन पड़ा है। ❑

विषय सूची

- आवरण—1 — 1
- आवरण—2 — 2
- करिष्ये वचनं तव—
  शिष्यों की सामूहिक साधना — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  सोशल मीडिया के विष से दूर रहें — 5
- मनुष्य का सच्चा स्वरूप — 9
- भूलोक की कामधेनु है गायत्री — 11
- मानव जीवन की गरिमा समझें — 14
- गायत्री यज्ञों की भूमिका — 15
- **पर्व विशेष—छठ पूजा**
  सूर्य-उपासना का पर्व है—छठ पूजा — 17
- हे प्रभो! जीवन हमारा यज्ञमय कर दीजिए — 20
- प्रार्थना का सच्चा स्वरूप — 21
- शंभाला का रहस्य — 23
- जीवन की हर परिस्थिति में
  संतुलन जरूरी — 26
- जीवन में आदर्श का महत्त्व — 28
- मानवता को प्रकृति के संकेत — 30
- धर्म और संस्कृति संरक्षिका
  अहिल्याबाई होल्कर — 33
- टिटिहरी का रोचक संसार — 36
- **युग ज्योति : वंदनीया माताजी जन्म शताब्दी लेखमाला—3**
  शांतिकुंज—वंदनीया माताजी की
  तपोभूमि — 39
- **हमारा युग निर्माण सत्संकल्प—10**
  मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी — 42
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—212**
  प्राण चिकित्सा का अवसाद पर प्रभाव — 46
- **युगगीता—318**
  फलाकांक्षा को प्रेरित करती है राजसी धृति — 49
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  प्रेरणादायी गुरुसत्ता का जीवन (उत्तरार्द्ध) — 51
- **विश्वविद्यालय परिसर से—257**
  नूतन संभावनाओं को साकार करता
  विश्वविद्यालय — 55
- **साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला**
  परिवर्तन के महान क्षण — 57
- **अपनों से अपनी बात**
  यह ज्योति अखण्ड बनी रहे — 60
- ज्योतिपर्व (कविता) — 66
- आवरण—3 — 67
- आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

मानवता को प्रकृति के संकेत

नवंबर-दिसंबर, 2026 के पर्व-त्योहार

सोमवार	02 नवंबर	अहोई अष्टमी	बुधवार	18 नवंबर	आँवला नवमी
गुरुवार	05 नवंबर	रमा एकादशी	शनिवार	21 नवंबर	देवोत्थान एकादशी
शुक्रवार	06 नवंबर	धनतेरस	मंगलवार	24 नवंबर	गुरुनानक जयंती/ पूर्णिमा
रविवार	08 नवंबर	रूप चतुर्दशी/ दीपावली			
सोमवार	09 नवंबर	अन्नकूट/ सोमवती अमावस्या	शुक्रवार	04 दिसंबर	उत्पत्ति एकादशी
मंगलवार	10 नवंबर	बेसतुबरस	रविवार	20 दिसंबर	गीता जयंती/मोक्षदा एकादशी
बुधवार	11 नवंबर	भाईदूज			
शनिवार	14 नवंबर	बाल दिवस/ लाभ पंचमी	बुधवार	23 दिसंबर	दत्तात्रेय जयंती/पूर्णिमा

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —संपादक**

सोशल मीडिया के विष से दूर रहें



स्मार्ट फोन आज जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। जीवन को सरल बनाने में यह अपनी प्रभावी भूमिका निभा रहा है। व्यक्ति का पूरा संसार जैसे एक फोन में सिमट गया है, लेकिन इसकी लत के चलते इससे जुड़े दुष्प्रभाव भी कम नहीं हैं जिनसे होने वाले घातक परिणाम चिंता का विषय बने हुए हैं, विशेषकर बच्चों व किशोरों के संदर्भ में, जो उनके भविष्य को अंधकार में धकेल रहे हैं।

हर समय मोबाइल की स्क्रीन से चिपके रहने की लत बच्चों और किशोरों के लिए घातक सिद्ध हो रही है। प्रत्येक वर्ष 20,000 बच्चे इसके कारण आत्महत्या कर रहे हैं। एक अनुमान के अनुसार, विभिन्न अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि बच्चे और युवा प्रत्येक दिन 4 से 8 घंटा मोबाइल और स्क्रीन पर बिता रहे हैं, जो अपने चरम पर वर्षभर में 100 दिनों से अधिक होते हैं।

आश्चर्य नहीं कि विश्वभर के 58 प्रतिशत देशों ने स्कूलों में फोन पर प्रतिबंध लगा दिया है। इंडोनेशिया दक्षिण पूर्व एशिया का पहला देश बन गया है, जिसने बच्चों को यूट्यूब, टिकटॉक, फेसबुक, इंस्टाग्राम, थ्रेड्स, एक्स, बिंगो लाइव और रोब्लॉक्सर के उपयोग को प्रतिबंधित किया है।

पारित नियम 16 वर्ष से कम आयु के बच्चों को उन डिजिटल प्लेटफॉर्मों तक पहुँचने से रोकता है, जो उन्हें अश्लीलता, साइबरबुलिंग, ऑनलाइन धोखाधड़ी और लत के संपर्क में ला सकते हैं। विशेषज्ञों के अनुसार बच्चों द्वारा सोशल मीडिया का उपयोग उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है और चिंता व अवसाद को बढ़ा सकता है।

इन खतरों को देखते हुए विशेषज्ञों के मत में सोशल मीडिया से बच्चों को दूर रखना आवश्यक हो गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की 2022-23 रिपोर्ट के अनुसार 11 से 15 वर्ष आयु वर्ग के लगभग 10 से 13 प्रतिशत किशोरों में अवसाद, चिंता और नींद की कमी से जुड़े समस्याजनक सोशल मीडिया उपयोग के लक्षण पाए गए हैं।

पिउ रिसर्च सेंटर के 2022 के सर्वेक्षण के अनुसार, सोशल मीडिया 59 % अमेरिकी किशोरों के आत्मविश्वास और मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है।

जर्नल ऑफ अडोलेसेंट हेल्थ के 2019 से 2023 के मध्य के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि प्रतिदिन 3 घंटे से अधिक सोशल मीडिया का उपयोग करने वाले किशोरों में अवसाद के लक्षणों की संभावना लगभग 60% तक बढ़ जाती है। मोबाइल, सोशल मीडिया और देर रात तक स्क्रीन का उपयोग युवाओं की नींद पर गंभीर प्रभाव डाल रहा है।

विशेषज्ञों का कहना है कि डिजिटल जीवनशैली के कारण युवाओं में नींद की कमी तेजी से बढ़ रही है और इससे अवसाद, आक्रामक व्यवहार और आत्महत्या की प्रवृत्ति तीव्रता से बढ़ रही है।

अमेरिका के सेंटर्स फॉर डिसीज कंट्रोल एंड प्रिवेंशन के अनुसार कम नींद का प्रभाव उनके व्यवहार पर भी दिखाई दे रहा है। जो किशोर रात में 7 घंटे से कम सोते हैं, उनमें आक्रामक व्यवहार

की संभावना 8 घंटे से अधिक सोने वालों की तुलना में लगभग 15 से 20 गुना अधिक होती है।

स्कूल आधारित सर्वेक्षणों से भी स्पष्ट होता है कि नींद की कमी से जूझ रहे किशोरों में झगड़े और बुलिंग की घटनाएँ 30 से 40% तक अधिक देखी जाती हैं। नींद की कमी और आत्महत्या के बीच भी संबंध सामने आया है।

कई अंतरराष्ट्रीय अध्ययनों में यह पाया गया है कि जिन लोगों को नींद से जुड़ी समस्याएँ होती हैं, उनमें आत्महत्या के विचार और संबंधित प्रयास का खतरा सामान्य लोगों की तुलना में 2 से 3 गुना अधिक हो सकता है। आँकड़ों के अनुसार लगभग 73% हाईस्कूल के छात्र स्कूल के दिनों में 8 घंटे से भी कम सोते हैं।

भारत में भी स्थिति चिंताजनक है। अध्ययनों के अनुसार 80 से 90% किशोर किसी-न-किसी स्तर पर नींद की कमी का सामना कर रहे हैं। कई सर्वेक्षणों में पाया गया है कि लगभग 64% किशोर 8 घंटे या उससे कम सोते हैं; जबकि विशेषज्ञों के अनुसार किशोरों को प्रतिदिन 8 से 10 घंटे की नींद आवश्यक होती है।

देश में बढ़ते आत्महत्या के आँकड़े भी इस चिंता को और गंभीर बनाते हैं। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार भारत में 2013 से 2023 की अवधि में विद्यार्थियों की आत्महत्याओं की संख्या 8,423 से बढ़कर 13,892 तक पहुँच गई, जो लगभग 65% की वृद्धि दरसाती है।

विशेषज्ञों के अनुसार अच्छी गुणवत्ता वाली नींद संपूर्ण स्वास्थ्य की बुनियाद है! अगर लोग अपनी दिनचर्या में थोड़ा बदलाव करें तो नींद से जुड़ी कई समस्याओं से बचा जा सकता है। नहीं तो यह गंभीर समस्या बन सकती है। तंत्रिका विज्ञान चेतावनी दे रहा है कि अत्यधिक स्क्रीन टाइम मस्तिष्क की कार्य-क्षमता को कमजोर कर सकता है।

नेशनल ज्योग्राफिक में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार 1997 से 2012 के बीच जन्मी जेन-जी पीढ़ी, जिसकी वैश्विक जनसंख्या करोड़ों में है, तकनीक के साथ सबसे गहराई से जुड़ी पीढ़ी मानी जाती है। अमेरिका में औसतन एक जेन-जी युवा प्रतिदिन 6 घंटे से अधिक समय टिकटॉक, यूट्यूब और इंस्टाग्राम जैसे प्लेटफॉर्म पर बिताता है।

मनुष्य का जीवन स्वयं ही प्रत्यक्ष देवता है। अन्य देवताओं की कृपा तो परलोक में मिलती है, पर अपने जीवन को सुघड़, सुसंस्कृत बनाने की उपासना के लाभ तो इस जीवन में भी मिलते हैं, परलोक में भी। इसमें रत्तीभर संदेह नहीं। अतः जीवन को सुसंस्कृत बनाना आवश्यक है।

इसी से जुड़ा शब्द ब्रेन रॉट अब सोशल मीडिया पर तेजी से लोकप्रिय हो रहा है, जिसका अर्थ है लगातार डिजिटल खपत के कारण दिमाग में सुस्ती, ध्यान की कमी और मानसिक धुँधलापन। इसके साथ नई पीढ़ी इंटरनेट के अत्यधिक उपयोग की आदी हो गई है।

सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग विश्व भर के युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य और जीवन संतुष्टि के लिए एक गंभीर खतरा बनकर उभरा है। वैश्विक खुशहाली रिपोर्ट-2026 के अनुसार सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग से युवाओं के खुशहाली स्तर में भारी गिरावट आई है; जबकि

शोधकर्त्ताओं ने कहा कि जिन देशों में सोशल मीडिया पर प्रतिबंध है, वहाँ के युवा वास्तविक सामाजिक संबंधों, परिवार और शारीरिक गतिविधियों को समय देने वाले युवा मानसिक रूप से अधिक स्वस्थ और संतुष्ट हैं।

रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका और यूरोप के कॉलेज छात्र अब व्यक्तिगत रूप से यह मानने लगे हैं कि वे सोशल मीडिया के बिना एक बेहतर और शांतिपूर्ण जीवन जी सकते हैं। भारत के संदर्भ में यह तथ्य महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि यहाँ बड़ी संख्या में किशोर तेजी से डिजिटल जगत् से जुड़ रहे हैं।

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्मार्टफोन की उपलब्धता बढ़ी है, परंतु डिजिटल साक्षरता का स्तर समान रूप से विकसित नहीं हुआ है। विशेषज्ञों का मानना है कि भारत में डिजिटल खपत और सामाजिक संबंधों के बीच असंतुलन खुशहाली के स्तर को प्रभावित कर रहा है।

आश्चर्य नहीं कि वैश्विक खुशहाली रिपोर्ट में भारत 116वें स्थान पर है; जबकि फिनलैंड, नॉर्वे सबसे खुशहाल देश के रूप में प्रथम स्थान पर हैं। रिपोर्ट से यह भी स्पष्ट हुआ कि इन देशों में युवा सोशल मीडिया के बिना भी अधिक खुश हैं। डिजिटल जगत् के शोर से दूर रहने या सोशल मीडिया का बेहद सीमित उपयोग करने वाले 25 वर्ष से कम आयु के युवाओं का जीवनस्तर उन लोगों की तुलना में कहीं बेहतर है, जो घंटों स्क्रीन पर बिताते हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रेन रॉट अर्थात डिजिटल मीडिया से जाम होते मस्तिष्क को बचाने की व्यवस्था जेन-जी अपने ढंग से कर रही है। लगातार स्क्रॉलिंग, शॉर्ट विडियो और इंस्टेंट डोपामिन के साथ तत्काल खुशी के दौर में जेन-जी अब अपने डिजिटल व्यवहार के दुष्प्रभावों को पहचान कर उससे बाहर निकलने का प्रयास कर रही है। टेक कपर्यू, डिजिटल डिटॉक्स और डोपामिन मैनेजमेंट जैसे वैज्ञानिक तरीकों के माध्यम से यह मानसिक स्पष्टता वापस लाने के प्रयोग कर रही है।

विशेषज्ञों का मानना है कि मस्तिष्क को स्वस्थ रखने के लिए जीवन में संतुलन आवश्यक है। सामाजिक संपर्क, विशेषकर परिवार के बाहर के लोगों के साथ मस्तिष्क को सक्रिय और संतुलित बनाए रखता है। लगातार अनेकों काम एक साथ करना, सोशल मीडिया में उलझे रहना और टीवी देखते रहना मस्तिष्क की कार्यक्षमता को कमजोर करता है।

विशेषज्ञों के अनुसार नई चीजें सीखना और ध्यान केंद्रित करने की क्षमता को प्रशिक्षित करना मस्तिष्क को तेज बनाए रखने का सबसे प्रभावी तरीका है। सोशल मीडिया की लत से बाहर निकलने के लिए इसके पीछे सक्रिय मनोविज्ञान को समझना भी आवश्यक है।

मालूम हो कि सोशल मीडिया के एल्गोरिथम इस तरह बनाए जाते हैं कि वे डोपामिन चक्र उत्पन्न करते हैं। लाइक, कमेंट्स और सूचनाएँ बच्चों को बार-बार स्क्रीन की ओर आकर्षित करते हैं। यह निरंतर उत्तेजना मस्तिष्क के विकासशील भागों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है और किशोरों को वास्तविक जीवन से दूर कर सकती है।

स्क्रॉलिंग के पीछे सक्रिय मनोविज्ञान व्यक्ति को लगातार स्क्रॉल करने के लिए विवश करता है। एक बार स्क्रॉल शुरू होने पर फिर इसको रोकना कठिन हो जाता है और इससे बाहर निकलना कठिन हो जाता है।

इसके लिए अपने स्क्रीन टाइम को संयमित करने का सचेष्ट प्रयास किया जा सकता है। ऐसी तकनीकी का सहारा लिया जा सकता है, जो बिना

सोचे-समझे स्क्रॉल करने से रोकने में सहायता करती हो।

एक उपाय सोशल मीडिया एप्स को फोन से हटा देना भी है। यदि पूरी तरह छोड़ना संभव न दिख रहा हो तो स्क्रॉल के लिए समय सीमा तय की जा सकती है। उस समय के लिए सोशल मीडिया से दूरी बनाई रखी जाए। साथ ही यह भी जानने का प्रयास करें कि आप स्क्रॉल क्यों करते हैं—तनाव से उबरने के लिए या किसी भावनात्मक दबाव या अधूरे कार्यों से बचने के लिए?

स्क्रॉलिंग स्वयं कोई समस्या नहीं, बल्कि किसी बड़ी समस्या का लक्षण हो सकती है। यह भी देखें कि स्क्रॉलिंग किस उद्देश्य से की जा रही है, इससे क्या लाभ हो रहा है। कुछ नया सीखने, नेटवर्किंग या अपने कार्य के लिए इसका उपयोग हो रहा है या यह अब एक आदत बन चुकी है, जिसके अंत में आप स्वयं में थका-हारा अनुभव करते हैं।

यदि स्क्रॉलिंग एक दिशाहीन कवायद बन चुकी है, जिसका कोई ठोस लाभ नहीं मिल पा रहा है तो मानकर चलें कि इसको छोड़ने का समय आ चुका है। इस तरह स्मार्ट फोन के बेहतरीन एवं सार्थक उपयोग के लिए इसका सम्यक उपयोग आवश्यक है। सोशल मीडिया के मायावी जाल से बच्चों व किशोरों को बचाने के लिए बड़ों को स्वयं भी समझदारी के साथ इसका उपयोग करना होगा और स्मार्ट फोन से जुड़ी समस्याओं का एक व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करना होगा। ❑

शिष्य ध्यान लगाने का प्रयत्न करता, पर मन बार-बार अस्थिर हो जाता, आखिरकार वह गुरु के पास समाधान माँगने पहुँचा तो गुरु बोले—"पुत्र! आज तुमने अन्न कहाँ से ग्रहण किया?"

शिष्य बोला—"गुरुदेव! आज नगरसेठ ने भोज रखा था तो वहीं अन्न ग्रहण करके आ रहा हूँ।"

गुरु गंभीर हुए और बोले—"वत्स! नगरसेठ का धन परिश्रम से उपार्जित नहीं, वरन गरीब लोगों को पीड़ा देकर एकत्रित किया गया है। उस धन से प्राप्त अन्न चित्त में उद्विग्नता ही उत्पन्न करेगा।"

शिष्य को अपने मन की अस्थिरता का कारण पता चला तो उसने संकल्प किया कि वह सदैव परिश्रम व ईमानदारी से कमाया हुआ अन्न ही ग्रहण करेगा।

मनुष्य का सच्चा स्वरूप

प्रकृति ने समस्त सृष्टि में मनुष्य को एक अद्वितीय स्थान प्रदान किया है। यह वही सत्ता है, जिसमें विचार, संवेदना, विवेक और करुणा—इन चारों का समन्वय है। मनुष्य के पास इतनी सामर्थ्य है कि वह अपने जीवन को स्वर्ग या नरक, दोनों में रूपांतरित कर सकता है। जैसे सूर्य अपने तेज से अंधकार मिटाता है, वैसे ही मनुष्य अपने शुभ विचारों और सत्कर्मों से संसार में प्रकाश फैला सकता है।

भगवद्गीता में कहा गया है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

—गीता-6/5

मनुष्य को अपने ही प्रयासों से स्वयं को ऊपर उठाना चाहिए, क्योंकि उसका सबसे बड़ा मित्र और शत्रु वही स्वयं है। यही आत्मविजय का आरंभिक बिंदु है। सच्चा मनुष्य वह नहीं, जो बाहरी वैभव से चमकता हो; बल्कि वह है, जिसकी अंतश्चेतना निर्मल और जागरूक हो। उसकी दृष्टि में सभी प्राणी समान हों और उसका हृदय प्रेम से पूर्ण हो।

बाहरी आडंबर, पद, प्रतिष्ठा और ज्ञान का कोई अर्थ नहीं यदि भीतर करुणा, क्षमा और संवेदना का अभाव है। आज का युग भले ही विज्ञान और भौतिक सुख-सुविधाओं से संपन्न हो गया हो, परंतु भीतर की शांति और आत्मसंतोष दुर्लभ हो गए हैं। शिक्षा और प्रगति ने मनुष्य को सुविधा दी है, परंतु उसका अंतर्मन संकीर्ण हो गया है। आधुनिक जीवन की यह सबसे बड़ी त्रासदी है, मनुष्य ने साधन तो अर्जित किए, पर साधना खो दी।

मनुष्य का सच्चा स्वरूप सेवा, प्रेम और साधना में निहित है। जब वह दूसरों के दुःख में अपना दुःख देखता है, जब उसके कर्म केवल स्वयं के लिए नहीं; बल्कि समाज के लिए होते हैं, तब उसका जीवन ईश्वरीय साधन बन जाता है। यही भाव वेदों में कहा गया है—

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय॥

यह प्रार्थना केवल ऋषियों की नहीं, बल्कि हर उस हृदय की है, जो भीतर के अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ना चाहता है।

महानता का आधार केवल विद्या या पद नहीं, बल्कि विनम्रता और संयम है। जो व्यक्ति किसी भी प्रकार की विपत्ति में भी शांत रहता है, और सफलता में भी अहंकार रहित बना रहता है, वही सच्चा ज्ञानी है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

—गीता-2/57

सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय में समभाव रखना ही आत्मस्थिरता है। ऐसा व्यक्ति ही दूसरों को स्थिरता और शांति का संदेश दे सकता है। परहित ही सच्चे धर्म का सार है।

तुलसीदास जी ने कहा है—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

जो दूसरों के सुख में आनंद और दुःख में करुणा अनुभव करता है, वही मानवता का उपासक है।

आज संसार को ऐसे ही मनुष्यों की आवश्यकता है, जो धर्म को कर्म में और प्रेम को व्यवहार में उतार सकें। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** यह केवल एक श्लोक नहीं, बल्कि जीवन दर्शन है। जब हम संपूर्ण जगत् को अपना परिवार मानने लगते हैं, तब सीमाएँ मिट जाती हैं और द्वेष, प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। तब हम न केवल अच्छे नागरिक बनते हैं, बल्कि सच्चे मनुष्य भी।

सच्चे मनुष्य की पहचान उसके त्याग, निष्ठा और करुणा से होती है। जो अपने सुख का त्याग करके किसी और की मुस्कान लौटा दे, वही इस पृथ्वी का सच्चा तीर्थ है। जो जीवन को सेवा का अवसर समझे, वही परमात्मा के समीप पहुँचता है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

—गीता 2/47

बिना फल की अपेक्षा के कर्म करते रहना- यही मनुष्य की सबसे बड़ी साधना है।

जब कर्म ईश्वर को अर्पित हो जाते हैं, तब जीवन साधारण नहीं रहता—वह साधना बन जाता है। सच्चा मनुष्य वही है, जो अपने भीतर के ईश्वर को पहचान लेता है, जो दूसरों के हृदय में उसी प्रकाश को देखता है। जब यह अनुभूति जागती है, तब द्वेष, हिंसा और अहंकार स्वयं विलीन हो जाते हैं।

मनुष्य का सच्चा स्वरूप प्रेम, करुणा और सृजन की शक्ति है। वही स्वरूप जब प्रकट होता है, तब संसार में शांति, सौहार्द और समृद्धि का संचार होता है। यही जीवन का परम लक्ष्य है, अपने भीतर की दिव्यता को पहचानना और उसे व्यवहार में उतारना। अतः प्रत्येक व्यक्ति को यह स्मरण रखना चाहिए कि उसका जीवन केवल उसके लिए नहीं, बल्कि संपूर्ण जगत् के कल्याण के लिए है। यही वह पथ है, जो मनुष्य को देवत्व की ओर ले जाता है और यही है—मनुष्यता का सच्चा स्वरूप। ❑

कलकत्ता के सोमानी जी के पिता का देहांत हुआ तो उन्होंने उनकी स्मृति में कोई प्रतीक बनवाने का निश्चय किया। जान-पहचान वालों, मित्रों-संबंधियों ने मंदिर, कुआँ, धर्मशाला से लेकर प्रशस्ति चिह्न बनवाने तक का सुझाव दिया; पर सोमानी जी की इच्छा कुछ ऐसा बनवाने की थी, जिससे अधिकाधिक लोग लाभान्वित होकर जीवन की सही दिशा पा सकें।

एक वर्ष तक सोचने-विचारने के पश्चात उन्होंने पुस्तकालय बनवाने का निश्चय किया और उसे बनवाकर उन्हें अत्यधिक आंतरिक संतुष्टि मिली। ज्ञान का उपहार ही सबसे बड़ा उपहार है, इससे अनेक दिशाहीनों को जीवन मिलता है।

भूलोक की कामधेनु है गायत्री



अनादि गुरुमंत्र के रूप में एकमात्र गायत्री मंत्र को ही प्रतिष्ठा प्राप्त है; क्योंकि मनुष्य के जीवन में दिव्यता, पवित्रता, समर्थता आदि का संचार गायत्री मंत्र के माध्यम से ही होता है। इसलिए सत्पुरुषों, ऋषियों, अवतारों—सभी ने इसी महामंत्र का पयपान किया है और उन सबने गायत्री की महिमा को माना है और उसकी उपासना के आधार पर वे महान बने हैं।

सृष्टि के कण-कण में दिव्य चेतना के रूप में संव्याप्त आदिशक्ति को ही गायत्री शक्ति कहा गया है। यही दिव्य चैतन्य शक्ति अपने गर्भ से विश्व को उत्पन्न करती है। वही अपने हृदय रस से विश्व का पालन-पोषण करती है। वही आवश्यकता अनुसार संसार में रूपांतरण और परिवर्तन करती है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि रूपों में भी वही महाशक्ति सक्रिय है। गायत्री महाशक्ति को वेदमाता, देवमाता और विश्वमाता भी कहा गया है। गायत्री मंत्र की उपासना के द्वारा हम उसी महाशक्ति की उपासना करते हैं, जिससे हमारे आत्मोद्धार का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसलिए गायत्री मंत्र की महिमा से हमारे शास्त्र भरे पड़े हैं।

मनु महाराज ने तो यहाँ तक कहा है कि जो गायत्री की उपासना करता है, उसे किसी और उपासना की आवश्यकता ही नहीं रहती। शास्त्रों के अनुसार यदि कोई उपासना नित्य और सनातन है तो वह केवल गायत्री-उपासना ही है।

एक पौराणिक कथा के अनुसार एक बार कैलास पर बैठे भगवान शिव से माता पार्वती ने पूछा—"हे देव! आप किस देव की उपासना करते हैं, जिससे आपको परम सिद्धि प्राप्त हुई?"

भगवान शिव महायोगी हैं, योगीश्वर हैं, योग के सभी रहस्यों से परिचित हैं। उन्होंने कहा—"देवी! गायत्री माता हैं और वे पृथ्वी की सबसे पहली और सबसे बड़ी शक्ति हैं। वे संसार की माता हैं। मैं उन्हीं की उपासना करता हूँ। योग के सारे साधनों की मूलाधार गायत्री ही हैं। गायत्री भू-लोक की कामधेनु हैं और उपासक को उनसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है।"

उन्होंने आगे कहा—"हे देवी! गायत्री की उपासना से उपासक के मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञाचक्र और ब्रह्मरंध्र (सहस्रार) आदि सभी चक्र खुल जाते हैं। इन सबके नीचे वह शक्ति सर्पिणी की भाँति कुंडली मारकर बैठी है, जिसे कुंडलिनी कहते हैं। सर्प जिस प्रकार बैठता है, उसी प्रकार तीन कुंडली मारकर वह महाशक्ति मूलाधार में सोई हुई है। रीढ़ की हड्डी जहाँ नीचे पहुँचकर अंत को प्राप्त होती है, वहाँ वह अपने मुँह से सुषुम्ना को पकड़े बैठी है। उसका मुँह यदि खुल जाए तो योगी के लिए कल्याण का मार्ग खुल जाता है।"

"किंतु उसका मुँह कैसे खुले? कौन कहे उस विद्युत या सर्पिणी से कि तू अपने मुँह को खोल, तू जाग और हमें योग की वह महाशक्ति दे, जिससे हम ऊपर उठने और ब्रह्मरंध्र में चमकती हुई विशाल ज्योति का दर्शन करने योग्य हो जावें?"—माता पार्वती ने पुनः प्रश्न किया।

शिवजी ने पार्वती से पुनः कहा—"देवी! गायत्री मंत्र के जप से, गायत्री की उपासना से उस कुंडलिनी का मुँह खुल जाता है और फिर एक-एक करके सारे चक्र खुलने लगते हैं।"

भगवान शिव ने एक और रहस्योद्घाटन करते हुए कहा—"हे पार्वती! कलियुग में मनुष्य के शरीर में पृथ्वी तत्त्व प्रधान होता है। तुम तो जानती हो कि उससे पूर्व के युगों में मनुष्य शरीरों में यह तत्त्व अधिक नहीं होता था, इसलिए कलियुग में मनुष्य को वह सिद्धि नहीं मिलती, जो पूर्व युगों में मनुष्य को मिलती रही है।" तब पार्वती जी ने प्रश्न किया—"हे देव! तब कलियुग में मनुष्यों का उद्धार कैसे होगा?"

भगवान शिव मुस्कराकर बोले—"हे पार्वती! गायत्री वह साधन है, जिसको अपनाकर, जिसकी उपासना करके, जप करके कलियुग का मनुष्य भी सिद्धि को प्राप्त हो सकता है। जो गायत्री को अपनी माता मानकर, उनकी गोद में, उनके चरणों में अपने-आप को अर्पण कर देता है, उसे वे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, जो कि उससे पहले के युगों के मनुष्यों को उनके शरीरों में सूक्ष्मतत्त्वों की प्रधानता के कारण प्राप्त होती थीं।

"गायत्री-उपासना से उपासक का आत्मोद्धार अवश्यंभावी हो जाता है; क्योंकि गायत्री परम तप है। गायत्री परम योग है। वे परम साधन और परम ध्यान हैं।

"वे सिद्धियों की प्रदाता हैं। उनसे बढ़कर संसार में और कुछ नहीं, परंतु यह जान लेना, समझ लेना भी आवश्यक है कि केवल गायत्री जप से नहीं, बल्कि गायत्री जप के साथ-साथ गायत्री मंत्र के अर्थ को जीवन में भली भाँति जीने से उपासक को गायत्री-उपासना से सफलता मिलती है।

"इतना ही नहीं हम शास्त्रों पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि जितने भी योगी-मुनि हुए हैं, उन सबने मुक्त कंठ से गायत्री-उपासना की सराहना की है और उनकी महिमा को स्वीकारा है। याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र सबने गायत्री की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि उनसे बढ़कर और कुछ भी नहीं है।

"प्राचीन संतों, ऋषियों के अलावा रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, शंकराचार्य, आनंद स्वामी, अरविंद, महर्षि रमण, पूज्य गुरुदेव आदि आधुनिक युग के महान संतों और ऋषियों ने भी गायत्री की महिमा का गुणगान किया है और इसे सर्वश्रेष्ठ उपासना कहा है। इसे महामंत्र और गुरुमंत्र कहा है।

"रामकृष्ण परमहंस कहते हैं—'गायत्री का जप करने से शक्ति प्राप्त होती है।' स्वामी विवेकानंद कहते हैं—'गायत्री सद्बुद्धि देती है। परमात्मा से यदि कोई तत्त्व मेल कराता है तो वह है सद्बुद्धि। जिसकी बुद्धि ठीक हो जाए उसके सभी कार्य ठीक होते हैं।'

"लोकमान्य तिलक कहा करते थे—'यदि कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर जाना हो तो गायत्री की उपासना करो। गायत्री मंत्र के जप से पाप-मैल दूर होता है और मनुष्य को यह प्रेरणा मिलती है कि वह ईश्वर के समीप किस प्रकार पहुँच सकता है।'

"पंडित मदन मोहन मालवीय कहते थे—'गायत्री में मनुष्य को ईश्वरविश्वासी बनाने की महान शक्ति है। गायत्री मंत्र जहाँ आत्मा को परमात्मा से मिलाता है और उसका दर्शन करा देता है, वहीं वह मनुष्य को संसार के सकल पदार्थ भी दे देता है। इससे अधिक शक्तिशाली मंत्र मैंने देखा नहीं।'

"रवींद्रनाथ टैगोर ने गायत्री-उपासना को लेकर कहा है—'भारत को जगाने वाला, यह सीधा-सा महामंत्र है। गायत्री मंत्र से अधिक सुंदर और कुछ है, यह मैंने आज तक नहीं देखा। गायत्री मंत्र का उच्चारण करता हुआ भक्त यह अनुभव करता है जैसे सारा जगत्, संपूर्ण ब्रह्मांड मेरा घर है। लोक

और परलोक इस घर के भीतर हैं। ऐसा विदित होता है, जैसे वह सूर्य और चंद्र नक्षत्रों और ग्रहों के मध्य खड़ा है। सभी ओर ज्योति नाच रही है, प्रकाश की नदियाँ बह रही हैं और उन सब-की-सब नदियों के साथ मेरा संबंध है।'

''गायत्री मंत्र का जप करने वाले को यह अनुभव करना चाहिए कि वह पृथ्वी से ऊपर उठकर अनंत आकाश में, अनंत नक्षत्रों के बीच खड़ा है। वहाँ पहुँचकर उसे गायत्री का उच्चारण करना चाहिए, जप करना चाहिए। ब्रह्म का ध्यान करने की यह प्राचीन विधि सर्वोत्तम है। इससे अधिक उत्तम और कोई योग-प्रणाली नहीं। इस विधि को ग्रहण करके मनुष्य सदा के लिए भगवान से अपना संबंध स्थापित कर लेता है। किसी अन्य विधि से यह बात नहीं होती।

''गायत्री महाविद्या के मर्मज्ञ, गायत्री के सिद्ध साधक व इस युग के विश्वामित्र परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री-शक्ति, गायत्री-जप, गायत्री-उपासना के विषय में कहा है कि 'संपूर्ण देवताओं की सम्मिलित शक्ति को गायत्री कहा जाए तो यह उचित ही होगा। समस्त देवशक्तियाँ उसी परम शक्ति गायत्री की किरणें हैं। जैसे जलते हुए अग्निकुंड में से चिनगारियाँ उछलती हैं, वैसे ही विश्व की महान शक्ति सरिता गायत्री की लहरें उन समस्त देव शक्तियों के रूप में देखने में आती हैं।'

''हमारे महान पूर्वजों ने अपने व्यक्तित्व को महानता के शिखर तक पहुँचाने के लिए गायत्री महामंत्र, गायत्री-उपासना को ही पकड़ा था और इसी सीढ़ी पर चढ़ते हुए वे देवपुरुषों में गिने जाने योग्य स्थिति प्राप्त कर सके थे।

''देवदूतों, अवतारों, ऋषियों, संतों, सिद्धों, ब्राह्मणों, महिलाओं व साधारण सद्गृहस्थों की उपास्य भी गायत्री ही रही हैं और उस अवलंबन के आधार पर उन्होंने न केवल आत्मकल्याण का श्रेय साधन किया है, वरन भौतिक सुख-संपदाओं की सांसारिक आवश्यकताओं को भी आवश्यक मात्रा में उपलब्ध किया है।

''इस प्रकार हम देखते हैं कि शास्त्रों व सभी प्राचीन और आधुनिक संतों, ऋषियों और अवतारों ने भी मनुष्य के सर्वविधि सुख-शांति, समृद्धि और आत्मोद्धार के लिए गायत्री मंत्र जप, गायत्री-उपासना को ही सर्वश्रेष्ठ व सर्वोत्तम कहा है। आज जब मनुष्य के अंदर देवत्व के स्थान पर असुरता उभर रही है और फलस्वरूप उसका पतन हो रहा है, तब गायत्री-उपासना उसके लिए और अधिक अपरिहार्य और अनिवार्य हो जाती है। गायत्री ही मनुष्य के अंदर सोये देवत्व को जगाकर उसे संसार के भयंकर पापों, रोगों व दु:खों से मुक्त कर, शाश्वत सुख प्रदान कर सकती हैं।'' ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

मानव जीवन की गरिमा समझें



मानसकार ने कहा है—"बड़े भाग मानुष तन पावा" अर्थात मनुष्य का शरीर बड़े सौभाग्य से प्राप्त होता है। यह केवल हाड़-मांस का ढाँचा नहीं, बल्कि अनंत संभावनाओं का केंद्र है। यह मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण, आनंद, परमानंद, ब्रह्मानंद प्राप्ति का साधन है। अस्तु मानव जीवन की गरिमा इस बात में निहित है कि हम इस दुर्लभ मानव शरीररूपी साधन से परमानंदरूपी साध्य की प्राप्ति करने में सफल हो जाएँ।

मानव जीवन की गरिमा का अर्थ है—अपने अस्तित्व के मूल्य को समझना और समाज का स्वयं के उत्थान के लिए कार्य करना। पशु, पक्षी आदि जीव अपने उत्थान के लिए न तो सोच सकते हैं और न कुछ कर सकते हैं, वे सिर्फ प्रारब्धजन्य भोग करके अपना जीवन पूरा कर सकते हैं; परंतु मनुष्य आत्मोद्धार ही नहीं, लोक-कल्याण के लिए भी पुरुषार्थ कर सकता है। क्यों? क्योंकि मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है।

संसार के समस्त प्राणियों में केवल मनुष्य को ही विवेक, चिंतन और अभिव्यक्ति की शक्ति प्राप्त है। पशु केवल अपनी शारीरिक आवश्यकताओं तक सीमित रहते हैं, पर मनुष्य उचित और अनुचित का भेद कर सकता है। वह प्रारब्धजन्य भोगों से ऊपर उठ सकता है, आध्यात्मिक पुरुषार्थ कर सकता है और जीवन के परम लक्ष्य को साध सकता है। यही अंतर, यही विवेक मानव को गरिमामय बनाता है। केवल अपने लिए जीना जीवन नहीं है। स्वयं के साथ-साथ दूसरों के दु:खों को दूर करना और समाज के कल्याण में योगदान देना ही जीवन की सार्थकता है।

एक व्यक्ति का पद या धन उसे गरिमा नहीं दिलाता, बल्कि उसका चरित्र और नैतिक मूल्य उसे महान बनाते हैं। करुणा, प्रेम, संवेदना, साहस, सेवा, सत्य, क्षमा, दया आदि मानवीय गुणों को स्वयं में विकसित कर लेने पर ही मनुष्य सही माने में मनुष्य बन पाता है। लोकजीवन में ईमानदारी, जिम्मेदारी, समझदारी और बहादुरीपूर्वक जीवन जीने में ही मानव जीवन की गरिमा है।

अपनी मर्यादा में रहना और दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करना, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं, इसी में मानव जीवन की गरिमा है। इंद्रियों पर नियंत्रण और अनुशासित, आध्यात्मिक जीवन ही व्यक्ति को पशुता से ऊपर उठाकर देवत्व की ओर ले जाता है। ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को जीवन में उतारने से ही मानव जीवन की गरिमा बढ़ती है।

आज की भाग-दौड़ भरी दुनिया में मनुष्य भौतिक सुखों के पीछे अंधाधुंध भाग रहा है। इस दौड़ में वह स्वयं से ही दूर होता जा रहा है और जीवन के वास्तविक उद्देश्य को भूलता जा रहा है। मानव जीवन एक दुर्लभ अवसर है। इसकी गरिमा तब तक सुरक्षित है, जब तक हम अपने जीवन के परमलक्ष्य को सदा याद रखते हैं और उसकी प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होते हैं, जब हम स्वार्थ से ऊपर उठकर परमार्थ की ओर अग्रसर होते हैं।

यदि हम अपने भीतर की दिव्यता को पहचान लें और श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्त हों, तो यह पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है और हम उस स्वर्ग में रहने वाले देवता बन सकते हैं, पर पहले हम मानव जीवन की गरिमा तो समझें। ❑

गायत्री यज्ञों की भूमिका



किसी भी युग-परिवर्तन का प्रारंभ व्यक्ति की अंतश्चेतना से होता है। जब मनुष्य अपने विचारों को पवित्र, निर्मल और उच्च बनाता है, तभी समाज और राष्ट्र में प्रकाश फैलता है। विचार ही वह बीज है, जिससे संस्कारों का वृक्ष पल्लवित होता है।

यदि व्यक्ति की वृत्ति में अंधकार, स्वार्थ या संकीर्णता है, तो समाज में अव्यवस्था, असंतुलन और पतन का वातावरण बनता है, किंतु जब विचारों में ईश्वरीय प्रेरणा और आदर्शों की ज्योति जगती है, तब संपूर्ण मानवता का उत्थान संभव हो पाता है।

इसी भाव से प्रेरित होकर युग निर्माण परिवार ने राष्ट्र और विश्व के पुनरुत्थान हेतु गायत्री-साधना और यज्ञ को केंद्र में रखकर युगक्रांति का शुभारंभ किया। यज्ञ केवल एक धार्मिक कर्मकांड नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि, लोक-मंगल और सामूहिक चेतना के जागरण का माध्यम है। यह व्यक्ति और समाज, दोनों के जीवन में पवित्रता, संतुलन और सकारात्मकता का संचार करता है।

यज्ञ के माध्यम से न केवल वायुमंडल की शुद्धि होती है, बल्कि मानव चेतना भी दिव्य बनती है। प्रत्येक आहुति का मंत्र-स्पंदन वातावरण में शुभ तरंगें फैलाता है, जो मनुष्य के भीतर सुप्त आदर्शों को जाग्रत करता है।

यज्ञ की अग्नि में जब श्रद्धा और संकल्प की आहुति दी जाती है, तब वह साधना बन जाती है—साधक के जीवन को नूतन दिशा और उद्देश्य देती है।

गायत्री यज्ञ वास्तव में एक वैज्ञानिक, आध्यात्मिक और सामाजिक प्रयोग है। यह नकारात्मक प्रवृत्तियों को रूपांतरित कर व्यक्ति के भीतर नई ऊर्जा, साहस और सृजनशीलता भरता है। यह आत्मा की शुद्धि और समाज की एकता का सशक्त साधन है।

गायत्री यज्ञों के माध्यम से न केवल वातावरण को प्रदूषण मुक्त किया गया, बल्कि मानव चेतना को भी संस्कारित करने का कार्य हुआ। जहाँ-जहाँ यज्ञ हुए, वहाँ लोगों के जीवन में आशा, उत्साह, सहयोग और आत्मविश्वास की नई किरणें फूटीं। गाँवों में, नगरों में प्रज्ञा योजनाएँ, विद्यालयों में चरित्र निर्माण के अभियान—इन सबका प्रेरणास्रोत यज्ञ की भावना ही रही है।

वस्तुतः युग निर्माण साधना के दो पंख हैं—गायत्री और यज्ञ। गायत्री-साधना व्यक्ति को भीतर से प्रकाशमान करती है, जबकि यज्ञ उस प्रकाश को समाज में प्रसारित करता है। एक आत्मा को ऊर्ध्वगामी बनाता है, दूसरा समाज को मंगलगामी। दोनों मिलकर आत्मा और समाज, व्यक्ति और विश्व—सबके उत्थान का आधार बनते हैं।

आज जब मानवता पुनः संकटों के घेरे में है—भौतिकता, स्वार्थ, हिंसा और विभाजन के अंधकार में डूबी हुई है, तब यज्ञों का यह दिव्य संकल्प पुनः मानवता के उद्धार का माध्यम बन सकता है। गायत्री यज्ञ केवल वेदों का कर्मकांड नहीं, बल्कि युग-परिवर्तन की चेतन शक्ति है। इसमें पर्यावरणीय शुद्धि से लेकर मानसिक, सामाजिक और नैतिक उत्थान तक की सामर्थ्य निहित है।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने यज्ञ को युग निर्माण का सबसे प्रभावी साधन बताया। उनके

अनुसार—यज्ञ वह चेतन प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के भीतर से अंधकार मिटाकर उसे आत्मप्रकाश से भर देती है।

जब व्यक्ति का अंत:करण शुद्ध होता है, तो वही समाज के शुद्ध होने का आधार बनता है। आज आवश्यकता है कि इस वैज्ञानिक और आध्यात्मिक प्रयोग को पुन: जन-जन तक पहुँचाया जाए।

जब हर परिवार, हर विद्यालय, हर संस्था यज्ञ के इस भाव को अपनाएगी—तब मानवता का वह स्वर्णिम युग अवश्य आएगा, जिसकी कल्पना पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी ने की थी।

गायत्री यज्ञों का वास्तविक लक्ष्य केवल धूप, मंत्र और आहुति तक सीमित नहीं है, यह तो मनुष्य के भीतर देवत्व जगाने की साधना है। युग-क्रांति के इस यज्ञ में हम सबका योगदान आवश्यक है; क्योंकि हर युग-परिवर्तन तभी संभव होता है, जब प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर का अंधकार मिटा कर दिव्यता का दीप प्रज्वलित करे। ❑

रेगिस्तान से यात्रियों का एक काफिला गुजर रहा था कि अचानक उसे लुटेरों के एक गिरोह ने घेर लिया। उन्होंने यात्रियों की तलाशी लेनी शुरू की और जिसके पास जो कुछ मिला, उसे लूट लिया। काफिले में एक बारह वर्ष का लड़का भी था। उसकी तलाशी में कुछ नहीं मिला तो लुटेरों के सरदार ने उसे डपटते हुए कहा—"ऐ लड़के! तेरे पास कुछ नहीं है क्या?"

उत्तर में लड़का बोला—"नहीं! मेरे पास सोने की 5 अशर्फियाँ हैं, जो मेरी माँ ने मेरी बीमार बहन के लिए दी थीं। वो अशर्फियाँ मेरी माँ ने मेरी तस्मद में छिपा दी थीं।" उसका उत्तर सुनकर सरदार को बड़ा आश्चर्य हुआ। आज तक उसे स्वयं छिपाई हुई संपदा बताने वाला कोई नहीं मिला था।

उसने अचरज भरे स्वर में उस बालक से पूछा—"क्यों रे! जब तेरी माँ ने अशर्फियाँ छिपा दी थीं तो तूने हमें क्यों बताईं।" वह बालक बोला—"यह मैं जानता हूँ, पर मुझे इसके साथ माँ ने यह भी सिखाया था कि जिंदगी में कभी झूठ न बोलना। झूठ बोलने से परवरदिगार का दिल दु:खता है। इसलिए आपने पूछा तो मैंने तुरंत सच बता दिया।"

बच्चे का उत्तर सुनकर लुटेरों के सरदार का हृदय परिवर्तन हो गया। उसने न केवल बच्चे की व अन्य यात्रियों की लुटी संपदा लौटाई, वरन सदा सच्चाई के पथ पर चलने की कसम भी खाई। अपनी सत्यनिष्ठा से अपराधियों का दिल बदलने वाला वही बच्चा, आगे चलकर खलीफा अमीन बना, जो अपनी न्यायप्रियता के लिए विश्वविख्यात हुए।

पर्व विशेष-छठ पूजा

सूर्य-उपासना का पर्व है — छठ पूजा



छठ सूर्य की उपासना का पर्व है। भारत में सूर्य-पूजा की परंपरा वैदिक काल से ही रही है। हिंदुओं के सबसे बड़े पर्व दीपावली को पर्वों की माला माना जाता है। पाँच दिन तक चलने वाले ये पर्व छठ पूजा तक चलते हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार में मनाया जाने वाला यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण पर्व है, जो पूरे देश में धूम-धाम से मनाया जाता है।

छठ पूजा केवल एक पर्व नहीं है, बल्कि महापर्व है, जो कुल चार दिन तक चलता है। नहाय खाय से लेकर उगते हुए भगवान सूर्य को अर्घ्य देने तक चलने वाले इस पर्व का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है। छठ पर्व को किसने शुरू किया, इसके पीछे कई ऐतिहासिक कहानियाँ प्रचलित हैं।

लंका विजय के बाद रामराज्य की स्थापना के दिन कार्तिक शुक्ल षष्ठी को भगवान राम और माता सीता ने उपवास किया और सूर्यदेव की आराधना की और सप्तमी को सूर्योदय के समय अनुष्ठान कर सूर्यदेव से आशीर्वाद प्राप्त किया। इसी के उपलक्ष्य में छठ पूजा की जाती है।

ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत सूर्य हैं। इस कारण शास्त्रों में सूर्य को भगवान मानते हैं, जिसके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। कुछ इसी तरह की परिकल्पना के साथ पूर्वोत्तर भारत के लोग छठ महोत्सव के रूप में इनकी आराधना करते हैं।

हमारे देश में सूर्य-उपासना के कई प्रसिद्ध लोकपर्व हैं, जो अलग-अलग प्रांतों में अलग-अलग रीति-रिवाजों के साथ मनाए जाते हैं। सूर्य षष्ठी के महत्त्व को देखते हुए इस पर्व को सूर्य छठ या डाला छठ के नाम से संबोधित किया जाता है।

इस पर्व को बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और नेपाल की तराई समेत देश के उन तमाम महानगरों में मनाया जाता है, जहाँ-जहाँ इन प्रांतों के लोग निवास करते हैं। यही नहीं मारिशस, त्रिनिडाड, सुमात्रा, जावा समेत कई अन्य विदेशी द्वीपों में भी भारतीय मूल के प्रवासी छठ पर्व को बड़ी आस्था और धूम-धाम से मनाते हैं। डूबते सूर्य की विशेष पूजा ही छठ का पर्व है। चढ़ते सूरज को सभी प्रणाम करते हैं।

छठ पर्व की परंपरा में वैज्ञानिक और ज्योतिषीय महत्त्व भी छिपा हुआ है। षष्ठी तिथि पर विशेष खगोलीय अवसर आता है। जिस समय धरती के दक्षिणी गोलार्द्ध में सूर्य रहता है और दक्षिणायन के सूर्य की अल्ट्रावॉयलट किरणें धरती पर सामान्य से अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाती हैं। इन दूषित किरणों का सीधा प्रभाव जनसाधारण की आँखों, पेट, त्वचा आदि पर पड़ता है।

इस पर्व के पालन से सूर्य-प्रकाश की इन पराबैंगनी किरणों से जनसाधारण को हानि न पहुँचे, इस अभिप्राय में सूर्य-पूजा का गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है। इसके साथ ही घर-परिवार की सुख-समृद्धि और आरोग्यता से भी छठ पूजा का व्रत जुड़ा हुआ है।

इस व्रत का मुख्य उद्देश्य पति, पत्नी, पुत्र, पौत्र सहित सभी परिजनों के लिए मंगलकामना से भी जुड़ा हुआ है। छठ पर्व की सांस्कृतिक परंपरा में चार दिन का व्रत रखा जाता है। यह व्रत भैया दूज के तीसरे दिन अर्थात शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि से आरंभ हो जाते हैं। व्रत के पहले दिन को नहा-खा कहते हैं। जिसका शाब्दिक अर्थ है। स्नान के बाद खाना। इस दिन पवित्र नदी गंगा में श्रद्धालु स्नान करते हैं।

वैसे तो यह पर्व मूलरूप से गृहणियों द्वारा मनाया जाता है, लेकिन आजकल पुरुष भी इसमें समान रूप से सहयोग देते हैं। छठ का पौराणिक महत्त्व अनादि काल से बना हुआ है। रामायण काल में सीता ने गंगातट पर छठ पूजा की थी। महाभारत काल में कुंती ने भी सरस्वती नदी के तट पर सूर्य पूजा की थी। इसके परिणामस्वरूप उन्हें पांडवों जैसे विख्यात पुत्रों का सुख मिला। इसके उपरांत द्रौपदी ने भी हस्तिनापुर से निकलकर गढ़ गंगा में छठ पूजा की थी।

छठ पूजा का संबंध हठयोग से भी है; क्योंकि इसमें बिना भोजन ग्रहण किए हुए लगातार पानी में खड़ा रहना पड़ता है, जिससे शरीर के अशुद्ध जीवाणु समाप्त हो जाते हैं। एक मान्यता के अनुसार छठ पर्व की शुरुआत महाभारत के समय हुई थी, जिसकी शुरुआत सबसे पहले सूर्यपुत्र कर्ण ने सूर्य की पूजा करके की थी।

कर्ण भगवान सूर्य के परम भक्त थे और वे प्रतिदिन घंटों कमर तक पानी में खड़े होकर सूर्य को अर्घ्य देते थे। सूर्य की कृपा से ही वे महान योद्धा बने। आज भी छठ के समय अर्घ्यदान की यही परंपरा प्रचलित है। छठ पर्व के बारे में एक कथा और भी है। इस कथा के मुताबिक जब पांडव अपना सारा राज-पाट जुए में हार गए, तब द्रौपदी ने छठ व्रत रखा था। इस व्रत से उनकी मनोकामना पूरी हुई थी और पांडवों को अपना राज-पाट वापस मिल गया था।

लोक परंपरा के मुताबिक सूर्यदेव और छठी मैया का संबंध भाई-बहन का है। इसलिए छठ के मौके पर सूर्य की आराधना फलदायी मानी गई। छठ पूजा अथवा छठ पर्व कार्तिक शुक्ल पक्ष की षष्ठी को मनाया जाता है। छठ से जुड़ी पौराणिक मान्यताओं और लोकगाथाओं पर गौर करें तो पता चलता है कि भारत के आदिकालीन सूर्यवंशी भरत राजाओं का यह मुख्य पर्व था।

छठ के साथ स्कंद पूजा की भी परंपरा जुड़ी है। भगवान शिव के तेज से उत्पन्न बालक स्कंद की छह कृतिकाओं ने स्तनपान करा रक्षा की थी। इसी कारण स्कंद के छह मुख हैं और उन्हें कार्तिकेय नाम से पुकारा जाने लगा। कार्तिक से संबंध होने के कारण षष्ठी देवी को स्कंद की पत्नी देवसेना नाम से भी पूजा जाने लगा।

लोक-आस्था के महापर्व छठ का हिंदू धर्म में अलग महत्त्व है। यह एकमात्र ऐसा पर्व है, जिसमें न केवल उदयाचल सूर्य की पूजा की जाती है, बल्कि अस्ताचलगामी सूर्य को भी पूजा जाता है। सूर्य-उपासना का यह पर्व कार्तिक महीने की चतुर्थी से सप्तमी तिथि तक मनाया जाता है। सूर्य षष्ठी व्रत होने के कारण इसे छठ कहा जाता है।

साधक को जो चीज पाने की चेष्टा करनी है, वह है—भगवान की ओर पूर्ण उद्घाटन, अपनी चेतना का चैत्य रूपांतरण, आध्यात्मिक रूपांतरण।

चेतना के उस परिवर्तन के आवश्यक घटक हैं— निस्स्वार्थता, विनम्रता, भक्ति, स्थिरता, समता, शांति, अचल सहृदयता।

मान्यता है कि छठ देवी सूर्यदेव की बहन हैं और उन्हीं को प्रसन्न करने के लिए भगवान सूर्य की आराधना की जाती है। पर्व का प्रारंभ नहाय-खाय से होता है, उस दिन व्रती स्नान कर अरवा चावल, चना दाल और कद्दू की सब्जी का भोजन करते हैं। नहाय-खाय के दूसरे दिन यानी कार्तिक शुक्ल पक्ष पंचमी को दिनभर व्रती उपवास कर शाम में रोटी और गुड़ से बनी खीर का

प्रसाद ग्रहण करते हैं। इस पूजा को खरना कहा जाता है।

इसके अगले दिन कार्तिक शुक्ल पक्ष षष्ठी तिथि को उपवास रखकर शाम को अस्ताचलगामी सूर्य को अर्घ्य दिया जाता है। इसके अगले दिन अर्थात सप्तमी तिथि को सुबह उदीयमान सूर्य को अर्घ्य अर्पित करके व्रत तोड़ा जाता है।

छठ पूजा के व्रत को जो भी रखता है—वह इन दिनों में जल भी नहीं ग्रहण करता है। इस व्रत को करने से सुख-समृद्धि और सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

इस पूजा में वैसे तो मुख्य रूप से सूर्य देवता की पूजा की जाती है, लेकिन साथ ही सूर्यदेव की बहन छठ देवी की भी पूजा की जाती है; जिसके कारण इस पूजा का नाम छठ पूजा पड़ा। इस दिन नदी के तट पर पहुँचकर पुरुष और महिलाएँ पूजा-पाठ करते हैं, साथ ही छठ माता की पूजा संतान के लिए भी कल्याणकारी होती है। अत: छठ को सूर्य-उपासना का पर्व माना जाता है। ❑

पादपों ने वट वृक्ष को संबोधित करते हुए पूछा—"वट पितामह! आपने ऐसे क्या कर्म किए हैं, कि आपको वरिष्ठता का सौभाग्य मिला है।"

वट बोले—"प्राणी को जिस प्रकार विधाता से अनुदान मिलते हैं, उसी प्रकार उसे भी उसे मिले वैभव, साधन, गुण इत्यादि को अपने पास संचित न रखकर निरंतर वितरित कर देना चाहिए। वरिष्ठ बनने की एकमात्र शर्त यही है कि हमें जो मिला, वह हमने अन्यों को बाँटा या नहीं। जो देने की उदारता दिखाता है, वही पाने का अधिकारी भी बनता है।"

पादपों को वट वृक्ष की बात समझ में आ गई।

हे प्रभो! जीवन हमारा यज्ञमय कर दीजिए



अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने गुरु कृप के आश्रम में विनम्रतापूर्वक प्रवेश कर कहा—"गुरुदेव! कुछ दिनों से मैं अनुभव कर रहा हूँ कि साधना और स्वाध्याय के प्रति मेरा मन स्थिर नहीं रह पा रहा। मैं अपने जीवन का उद्देश्य खोज नहीं पा रहा हूँ। कृपा करके मार्गदर्शन करें।"

कृपाचार्य ने स्नेह से मुस्कराते हुए पूछा—"पुत्र! क्या तुमने कभी स्वयं से यह प्रश्न किया है कि तुम्हारा लक्ष्य क्या है? केवल चिंतन ही नहीं, कर्म में प्रवृत्त होना ही वास्तविक तप है।" अभिमन्यु ने विनम्रता से कहा—"गुरुदेव! मैं प्रतिदिन यज्ञ करता हूँ, स्वाध्याय करता हूँ, ध्यान भी लगाता हूँ, परंतु फिर भी अंतर्मन में एक शून्यता बनी रहती है।"

कृपाचार्य ने गंभीर स्वर में कहा—"पुत्र! केवल अपने लिए कर्म करना अधूरा है। जब तक तुम्हारे कर्म में लोक-कल्याण का भाव नहीं होगा, तब तक यज्ञ अधूरा रहेगा। तुम्हारे भीतर जो शक्ति है, उसे समाज के हित में लगाना ही सच्चा कर्मयज्ञ है।"

उनका यह वाक्य सुनकर अभिमन्यु के भीतर जैसे कोई दीप जल उठा। उसने प्रणाम करते हुए कहा—"गुरुदेव! मैं आपके आदेश का पालन अवश्य करूँगा।" अगले ही दिन से अभिमन्यु गाँव-गाँव घूमने लगा। कहीं वह वृक्ष लगाता, कहीं बीमारों की सेवा करता, तो कहीं बच्चों को शिक्षा देता। धीरे-धीरे उसकी सेवा की चर्चा चारों ओर फैल गई। लोग उसे केवल वीर योद्धा ही नहीं, बल्कि करुणा और कर्त्तव्य का प्रतिरूप कहने लगे।

वर्षों बीत गए। एक दिन वही अभिमन्यु अपने गुरु कृपाचार्य के पास लौटा। उसके नेत्रों में संतोष की चमक थी। 'गुरुदेव', उसने कहा—"अब मैं समझ गया हूँ—केवल वेद, ध्यान या तप से नहीं, बल्कि निस्स्वार्थ कर्म से ही सिद्धि प्राप्त होती है। प्रत्येक कार्य, जब समर्पण और लोक-मंगल की भावना से किया जाता है, तब वही सच्चा यज्ञ बन जाता है।"

प्रतिभा एक दैवी स्तर की विद्युत चेतना है, जो मनुष्य के व्यक्तित्व में असाधारण स्तर की उत्कृष्टता भर देती है। उसी के आधार पर अतिरिक्त सफलताएँ आश्चर्यजनक मात्रा में उपलब्ध की जाती हैं। साथ ही इतना और जुड़ता है कि अपने लिए असाधारण श्रेय, सम्मान और दूसरों के लिए अभ्युदय के मार्ग पर घसीट ले चलने वाला मार्गदर्शन वह कर सके।

— परमपूज्य गुरुदेव

कृपाचार्य ने प्रसन्न होकर कहा—"पुत्र! आज तुमने यज्ञ का मर्म समझ लिया है। जिस दिन मनुष्य अपने कर्म को पूजा मान लेता है, उसी दिन उसका जीवन यज्ञमय बन जाता है।" अभिमन्यु ने विनम्रता से सिर झुकाया। सूर्य अस्त हो रहा था, पर उस संध्या के रंगों में एक नए प्रभात का संकेत था, कर्म ही सच्ची साधना है। ❑

प्रार्थना का सच्चा स्वरूप



मनुष्य जब ईश्वर के सम्मुख आता है तो प्रायः उसके मन में यह भावना रहती है कि प्रार्थना का उद्देश्य माँगना है—धन, वैभव, स्वास्थ्य, सफलता या अन्य सुख-सुविधाएँ। अधिकांश लोग ईश्वर को एक ऐसे दाता के रूप में मान लेते हैं, जिसके सामने माँगपत्र प्रस्तुत कर दिया जाए और बदले में मनचाही वस्तु प्राप्त हो जाए, किंतु प्रार्थना का वास्तविक स्वरूप ऐसा नहीं है। यह लेन-देन या सौदेबाजी का साधन नहीं, बल्कि आत्मा को ऊँचाई पर उठाने और जीवन को पवित्र बनाने का एक अद्भुत माध्यम है।

सूर्य प्रतिदिन अपनी किरणें सबको समान रूप से प्रदान करता है, लेकिन जो व्यक्ति आँखें मूँद लेता है, वह उस प्रकाश से वंचित रह जाता है। ठीक इसी प्रकार परमात्मा का प्रकाश, उसकी अनुकंपा और उसकी प्रेरणाएँ तो सब ओर व्याप्त हैं, परंतु जो अपने भीतर का द्वार खोलते हैं, वही उस दिव्य अनुभूति का लाभ उठा पाते हैं।

प्रार्थना का अर्थ है—अपने भीतर की आँखें खोलना, स्वयं को उस अनंत प्रकाश के प्रति समर्पित करना। जब हम सच्चे मन से प्रार्थना करते हैं तो उसके माध्यम से हमारी अंतश्चेतना शुद्ध होती है, विचारों में स्पष्टता आती है और भावनाएँ निर्मल बनती हैं।

प्रार्थना केवल शब्दों का उच्चारण नहीं है, यह हृदय की गहराई से उपजी हुई पुकार है, जिसमें अहंकार नहीं, केवल आत्मिक समर्पण होता है। जब यह समर्पण सच्चे मन से किया जाता है, तो प्रार्थना साधक के भीतर नई ऊर्जा, नई प्रेरणा और असाधारण साहस का संचार करती है।

प्रार्थना हमें यह कभी नहीं सिखाती कि समस्याओं से दूर भाग जाओ, कठिनाइयों से डर कर ईश्वर से मुक्ति माँगो अथवा छुटकारे की प्रार्थना करो। इसके विपरीत, यह हमें भीतर से इतना दृढ़ बनाती है कि हम जीवन की

सुनिश्चित है कि लोगों की आस्थाओं को युग के अनुरूप विचारधारा को स्वीकारने हेतु उचित मोड़ दिया जा सके तो कोई कारण नहीं कि सुखद भविष्य का, उज्ज्वल परिस्थितियों का प्रादुर्भाव संभव न हो सके। यह प्रवाह बदलकर उलटे को उलटकर सीधा बनाने की तरह भागीरथी कार्य है, किंतु असंभव नहीं, पूर्णतः संभव है।

—परमपूज्य गुरुदेव

चुनौतियों का सामना धैर्य और विवेक के साथ कर सकें।

दीपक स्वयं जलकर अंधकार को मिटाता है, उसी प्रकार प्रार्थना साधक के अंतःकरण को आलोकित करती है और उसे सत्पथ पर चलने के

लिए प्रेरित करती है। वास्तविक प्रार्थना वह है, जिसमें हमारा जीवन और आचरण भी सम्मिलित हो। केवल वाणी से प्रार्थना करना और कर्मों में उसके विपरीत आचरण करना, यह प्रार्थना को निष्फल बना देता है।

यदि कोई व्यक्ति ईश्वर से करुणा माँगे और स्वयं कठोर व निर्दयी बना रहे, यदि कोई शांति माँगे और अपने व्यवहार से दूसरों में अशांति फैलाता रहे, तो ऐसी प्रार्थना का कोई महत्त्व नहीं। प्रार्थना तभी सार्थक है, जब वह हमारे विचारों, भावनाओं और आचरण में उतरकर उन्हें श्रेष्ठ बना दे। प्रार्थना का असली उद्देश्य आत्मपरिष्कार है। जब हम सच्चे मन से ईश्वर की शरण ग्रहण करते हैं तो भीतर की मलिनता स्वतः दूर होने लगती है। लोभ, मोह, क्रोध और अहंकार का बोझ हलका होता है और मनुष्य पवित्रता, विनम्रता, उदारता और करुणा जैसे गुणों से परिपूर्ण होता है।

यही गुण जीवन में वास्तविक सुख और शांति का आधार बनते हैं। प्रार्थना केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं होती, यह व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करती है। इससे मनुष्य का हृदय विशाल होता है और उसमें दूसरों के लिए भी मंगलकामना उत्पन्न होती है।

जब मनुष्य केवल अपने ही लिए नहीं, अपितु संपूर्ण जगत् के कल्याण के लिए प्रार्थना करता है, तभी उसकी आत्मा का वास्तविक विस्तार होता है। प्रार्थना कोई साधारण क्रिया नहीं है। यह आत्मा की पुकार है, यह ईश्वर से संवाद है, यह आत्मोन्नति का सोपान है। यह हमें माँगने की नहीं, बल्कि देने की भावना सिखाती है।

प्रार्थना के माध्यम से हम अपनी दुर्बलताओं को त्यागकर, अपनी अंतश्चेतना को उज्ज्वल बनाकर और अपने आचरण को पवित्र बनाकर दिव्य जीवन की ओर बढ़ते हैं। यही प्रार्थना का सच्चा स्वरूप और उसकी चरम सफलता है। ❑

महर्षि वसिष्ठ महाराजा अज के यहाँ पौरोहित्य के कर्म के लिए निकले। मार्ग में नंद नामक एक व्यक्ति मिला, जो अपना दुःख उनसे व्यक्त करने लगा और बोला—"ऋषिवर! मैंने जीवनभर परिश्रम किया है, परंतु उसका कुछ सुखद परिणाम नहीं मिल पाएगा। मुझसे स्नेह करने वाला व मुझे प्रेम करने वाला कोई नहीं है।"

ऋषि बोले—"तात्! प्यार चाहिए, तो बाँटना सीखो। तुम अपने भावना-पक्ष को सबल बनाओ। जो मिले, उसे प्रेम दो और फिर देखो कि लोग कैसे तुम्हें प्रेम व सम्मान नहीं देते हैं।"

महर्षि के वचनों ने नंद को जीवन की नई दिशा दे दी।

शंभाला का रहस्य



शंभाला दुर्गम हिमालय में स्थित एक ऐसा दिव्यक्षेत्र है, जहाँ सिद्ध, योगी एवं उच्चस्तरीय आत्माएँ वास करती हैं। माना जाता है कि यहाँ के वासी रोग, शोक, दुःख, मृत्यु जैसी सांसारिक सीमाओं एवं विकारों से मुक्त हैं और वे विशुद्ध पारमार्थिक भाव एवं विश्वकल्याण के लिए कार्य करते हैं। यहाँ के दिव्य वातावरण को देखते हुए इसे धरती का स्वर्ग कह सकते हैं।

यह रहस्यमयी एवं दिव्य क्षेत्र हर युग में अन्वेषकों, खोजियों एवं अध्यात्मप्रेमियों के लिए आकर्षण का केंद्र रहा है और कई रोमांचक अभियानों का प्रेरणास्रोत रहा है। शंभाला हिंदू और तिब्बती बौद्ध धर्म में वर्णित एक रहस्यमयी, आध्यात्मिक और पौराणिक नगरी है—जहाँ केवल उच्च साधक और प्रबुद्ध आत्माएँ ही निवास करती हैं, जो सभी सांसारिक दुःखों से मुक्त हैं।

तिब्बती बौद्ध धर्म के कालचक्र तंत्र में इसे एक आदर्श साम्राज्य बताया गया है। इनकी मान्यता के अनुसार, जब विश्व में अज्ञानता और हिंसा चरम पर होगी, तब शंभाला के राजा प्रकट होकर शांति और करुणा की रक्षा करेंगे। हिंदू धर्म में ऐसी गहरी मान्यता है कि भगवान विष्णु के दसवें अवतार, भगवान कल्कि का जन्म यहीं होगा। इसे सिद्धाश्रम भी कहा जाता है।

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार, शंभाला हिमालय के उत्तर या कैलास पर्वत के आस-पास छिपा हुआ एक रहस्यमय और दिव्य क्षेत्र है, जिसे ज्ञान, शांति और अमरता का स्थान माना जाता है। सांस्कृतिक और आध्यात्मिक संदर्भों के अतिरिक्त शंभाला का रहस्य विश्वभर के खोजकर्त्ताओं, लेखकों एवं रहस्यवादियों के लिए सदैव एक आकर्षण का केंद्र रहा है।

रूसी चित्रकार, दार्शनिक, पुरातत्त्वविद्, गुह्यवादी एवं अन्वेषक निकोलाई रोरिक ने इस स्थान की खोज में मध्य एशिया और तिब्बत की कई विस्तृत यात्राएँ कीं और शंभाला के दर्शन को अपनी कला और साहित्य का मुख्य केंद्र बनाया। उनके लिए शंभाला केवल एक पौराणिक कथा नहीं, बल्कि एक वास्तविक उच्च चेतना और शांति का प्रतीक था।

उनके अनुसार बौद्धग्रंथों में, शंभाला को एक शुद्ध और प्रबुद्धभूमि माना जाता है, जो भौतिक और आध्यात्मिक रूप से मानव चेतना के नए युग से जुड़ी है। तिब्बती लामाओं के अनुसार, यह केवल एक स्वर्गीय लोक नहीं, बल्कि पृथ्वी पर ही एक गुप्त स्थान है। सन् 1924 से 1928 के मध्य, निकोलाई रोरिक और उनकी पत्नी हेलेना ने शंभाला के भौतिक और आध्यात्मिक अस्तित्व को खोजने के लिए मध्य एशिया, मंगोलिया और तिब्बत की बेहद दुर्गम यात्राएँ कीं।

इस अभियान के दौरान उन्होंने 30 से अधिक दुर्गम दर्रों को पार किया और कई बार उनका पूरा दल लापता भी हो गया था। उनका मुख्य उद्देश्य शंभाला के भौतिक अस्तित्व के साक्ष्य खोजना और उस दिव्य राज्य के द्वार तक पहुँचना था। रोरिक का मानना था कि अल्ताई पर्वत की 'बेलुखा' चोटी और हिमालय की कुछ गुप्त घाटियाँ शंभाला के मुख्य प्रवेश द्वार हैं। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक

शंभाला सहित कई लेखों में शंभाला के रहस्यों का वर्णन किया।

रोरिक ने अपनी प्रसिद्ध चित्रकला में हिमालय के दुर्गम शिखरों को जीवंत रंगों में उकेरा, जिन्हें विभिन्न कला दीर्घाओं में देखा जा सकता है। उनकी कला में हिमालय की अलौकिक भव्यता, शंभाला की तेजस्वी किरणें और आध्यात्मिक शांति साफ झलकती है।

उन्होंने अपने अनुभवों और तिब्बती लामाओं के साथ हुए संवादों को 'शंभाला-इन सर्च ऑफ दि न्यू इरा' नामक पुस्तक में संकलित किया, जिसमें उन्होंने बताया कि कैसे पृथ्वी का शंभाला स्वर्गीय शंभाला से जुड़ा हुआ है।

निकोलाई रोरिक ने इसे आने वाले नए युग और 'पृथ्वी पर स्वर्ग' की स्थापना के रूप में देखा था। शोध अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शंभाला और सिद्धाश्रम भिन्न-भिन्न संस्कृतियों और धर्मों में वर्णित एक ही रहस्यमय, आध्यात्मिक एवं दिव्य स्थान के भिन्न-भिन्न नाम हैं। इस गुप्त और अलौकिक क्षेत्र को हिंदू परंपरा में सिद्धाश्रम या ज्ञानगंज कहा जाता है; जबकि तिब्बती बौद्ध परंपरा में इसे शंभाला के नाम से पूजा जाता है।

पश्चिमी जगत् में इसी क्षेत्र से प्रेरित होकर इसे शांग्री-ला नाम दिया गया। हिंदू धर्मग्रंथों के अनुसार यहाँ अमर सिद्ध योगी और ऋषि निवास करते हैं। तिब्बती बौद्ध धर्म और कालचक्र तंत्र में इसे एक आध्यात्मिक और जादुई भूमि माना जाता है।

दोनों ही परंपराओं के अनुसार, यह स्थान जनसाधारण की पहुँच से दूर है और यहाँ केवल उच्च आध्यात्मिक चेतना वाले लोग ही पहुँच सकते हैं। इस तरह दोनों ही स्थानों को हिमालय की गहराइयों में या कैलास पर्वत के निकट एक अदृश्य, गुप्त लोक के रूप में वर्णित किया गया है—जहाँ अमर योगी, सिद्धपुरुष, संत और उच्च कोटि की दिव्य आत्माएँ निवास करती हैं, जो पूर्ण ज्ञान और शांति प्राप्त कर चुके हैं और भौतिक जगत् से दूर रहकर विश्व-ब्रह्मांड के कल्याण के लिए कार्य करती हैं।

पाठक ध्यान दें

नए डाक नियमों के अनुसार अब बिना पिनकोड व मोबाइल नंबर के कोई डाक नहीं जा सकेगी।

कृपया सभी पाठक अपनी सदस्य संख्या, संपूर्ण नाम पते सहित, पिनकोड, मोबाइल, ई-मेल, व्हाट्सएप नंबर अखण्ड ज्योति संस्थान के पते पर डाक से, ई-मेल akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org पर अथवा व्हाट्सएप नं. 9927086290 पर तुरंत भेजने का अनुग्रह करें।

आगे से अपने सभी पत्र व्यवहार में पिनकोड, मोबाइल नंबर व व्हाट्सएप नंबर का उल्लेख अवश्य करें।

सिद्धाश्रम जैसे गुह्यस्थलों का उल्लेख रामायण, महाभारत और वेदों में मिलता है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार जहाँ महर्षि विश्वामित्र का आश्रम था, वहाँ श्रीराम और लक्ष्मण ने बला, अतिबला विद्याएँ सीखी थीं। यह वामन अवतार की भूमि भी रही है। वहीं विष्णुपुराण में भविष्यवाणी है कि इसी शंभल में भगवान विष्णु का कल्कि अवतार होगा।

बौद्ध धर्म के 'कालचक्र तंत्र' में शंभाला को एक शुद्ध आध्यात्मिक साम्राज्य माना गया है। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार यह स्थान किसी सामान्य आधुनिक मानचित्र या सेटेलाइट से चालित गूगल मैप आदि पर दिखाई नहीं देता है।

मान्यता है कि यह भौतिक रूप से उपस्थित होने के साथ-साथ एक उच्च आयाम में स्थित है। यहाँ केवल वही व्यक्ति पहुँच सकता है, जिसने घोर तपस्या की हो और जिसकी आध्यात्मिक चेतना अत्यंत उच्च स्तर पर हो। संक्षेप में तत्त्व और रहस्य के स्तर पर सिद्धाश्रम, शंभाला और ज्ञानगंज एक ही परम पवित्र और अदृश्य भूमि के अलग-अलग नाम हैं।

सारत: शंभाला जैसा कोई स्थूलक्षेत्र पृथ्वी पर नहीं है, जहाँ सामान्य व्यक्ति जा सके। यह इसी धरती पर विद्यमान दूसरे आयाम में स्थित एक दिव्य धाम है, जहाँ सुपात्र उच्च आत्माएँ ही प्रवेश पा सकती हैं, वहाँ के प्रशिक्षण का हिस्सा तक बन सकती हैं, लेकिन यह विशुद्ध रूप से लोकहित के लिए है, न कि किसी वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षा, शक्ति प्रदर्शन या दूसरों पर अपने अधिकार जमाने के लिए।

मात्र कुतूहल प्रेमी अनगढ़ आत्माओं के लिए यहाँ की खोज निराशाजनक ही रहती है। निकोलाई रोरिक का मानना था कि शंभाला को केवल भौगोलिक रूप से नहीं, बल्कि उच्चतम और सबसे पवित्र कर्मों तथा सांस्कृतिक चेतना को जगाकर ही पाया जा सकता है।

आश्चर्य नहीं कि दूसरों पर शासन करने के अभिलाषी, विश्व पर राज करने की महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित कई सत्ताधारियों, अधिनायकवादियों ने इसकी खोज का प्रयास किया है व अभी भी कर रहे हैं, लेकिन इनका पहुँचना तो दूर, यहाँ के प्रवेश व इसके अस्तित्व पर भी कोई सूत्र उनके हाथ नहीं लग पाया है; जबकि सुपात्र वहाँ जाकर प्रशिक्षण प्राप्त भी कर चुके हैं और धरती को सुरम्य एवं धर्मयुक्त बनाने में अपना योगदान दे रहे हैं।

इतना समझ आ जाए तो आवश्यकता अपनी पात्रता विकसित करने में है, न कि उस आयाम में जबरन प्रवेश की जिद लेकर चलने की; क्योंकि यहाँ विद्यमान दिव्य आत्माएँ आगंतुक की नियत, उद्देश्यों एवं पात्रता को भली भाँति जानती हैं और किसी तरह की अनधिकार चेष्टा या मानवता के लिए अहितकर मंतव्य को सफल होने की गलती नहीं कर सकतीं, जबकि सुपात्रों के लिए इस दिव्य क्षेत्र के द्वार सदैव खुले रहते हैं। केवल उच्च आत्मिक अवस्था वाले साधक ही इस पावन भूमि तक पहुँच सकते हैं। ❑

तालाब में कमल और तट पर गुलाब का फूल खिला हुआ था। गुलाब अकड़कर बोला—"कमल जी! आप दिखने में तो इतने विशालकाय हैं, पर सुगंध इतनी कम क्यों देते हैं, मुझे देखिए! मेरी सुगंध तो दूर-दूर तक फैलती है।" कमल बोला—"भाई गुलाब! आप सुगंध बिखेरते हो और मैं सौंदर्य। हम दोनों मिलकर जो काम कर रहे हैं, वो अकेले नहीं किया जा सकता था।" गुलाब अपने अहंकार पर लज्जित हो गया।

जीवन की हर परिस्थिति में संतुलन जरूरी

जीवन का सबसे बड़ा सत्य है परिवर्तन। जैसे मौसम बदलते हैं, दिन-रात का चक्र चलता है, वैसे ही मनुष्य के जीवन में भी सुख-दुःख, सफलता-असफलता, लाभ-हानि निरंतर आते-जाते रहते हैं। यह प्रकृति का नियम है कि कोई भी अवस्था स्थायी नहीं रहती। यदि जीवन में केवल सुख ही होता है तो वह भी एक दिन बोझिल हो जाता है, और यदि केवल दुःख ही होता तो जीवन असहनीय हो जाता। दोनों का संतुलन ही जीवन को अर्थपूर्ण और जीवंत बनाता है।

मृत्यु को हम अक्सर अंत समझ बैठते हैं, परंतु वास्तव में वह एक नए आरंभ की तैयारी है। जैसे बीज मिट्टी में दबकर नष्ट होता है, तभी उससे नया अंकुर फूटता है, वैसे ही मृत्यु जीवन की यात्रा का विराम नहीं, बल्कि एक नए अध्याय का उद्घाटन है। इस सत्य को समझ लेने पर मनुष्य मृत्यु से भयभीत नहीं होता, बल्कि निर्भीक होकर जीवन को जीना सीखता है।

हम अक्सर सोचते हैं कि दुःख क्यों आता है, परंतु यदि गहराई से देखें तो दुःख ही हमें सबसे अधिक सिखाता है। दुःख हमें भीतर से मजबूत बनाता है, सहनशीलता और धैर्य प्रदान करता है। सुख क्षणिक उल्लास देता है, पर दुःख आत्मा को तपाकर परिष्कृत कर देता है।

विपत्ति मनुष्य को अपनी छिपी हुई क्षमताओं से परिचित कराती है। जिस प्रकार सोना अग्नि में तपकर ही शुद्ध और चमकदार बनता है, वैसे ही इनसान दुःख और कठिनाइयों में तपकर निखरता है। संघर्ष और संकट हमारे जीवन के सबसे बड़े शिक्षक हैं।

वे हमें आत्मबल, साहस और विश्वास प्रदान करते हैं। जब सब कुछ अनुकूल हो तो प्रसन्न रहना सहज है, परंतु जब परिस्थिति प्रतिकूल हो और मनुष्य तब भी संतुलित रह सके—वही सच्ची साधना है।

परमात्मसत्ता का एक विराट स्वरूप वह है, जो हमारे चारों ओर दिग्-दिगंत में व्याप्त है। सामान्य बुद्धि इसे समझ नहीं पाती, न इसे परिपूर्ण रूप से जान पाती है। दूसरा स्वरूप वह है, जिससे जीव जुड़ा है। एक को परब्रह्म एवं दूसरे को परमात्मा कहते हैं।

अंधकार चाहे कितना भी गहरा क्यों न हो, दीपक की लौ उसे चीरकर प्रकाश फैला देती है। ठीक उसी प्रकार, जीवन की कठिन घड़ी में विश्वास और आशा का दीपक हमें मार्ग दिखाता है। मनुष्य की वास्तविक शक्ति बाहरी साधनों में नहीं, बल्कि उसके मन और आत्मा की स्थिरता में है।

यदि मनुष्य अपने विचारों को नियंत्रित करना सीख ले तो कोई परिस्थिति उसे विचलित नहीं कर

सकती। जब मनुष्य हर अनुभव को ईश्वर का प्रसाद मानकर स्वीकार करता है, तब सुख-दु:ख, हानि-लाभ उसके लिए समान हो जाते हैं। यही वह दृष्टिकोण है, जो जीवन को साधना और तपस्या का रूप देता है।

जीवन का सार यही है कि हम हर परिस्थिति के लिए तैयार रहें। सुख और दु:ख को विरोधी न मानकर पूरक समझें। सफलता हमें आत्मविश्वास देती है, असफलता हमें विनम्रता का पाठ पढ़ाती है। लाभ हमें आनंद देता है, हानि हमें सावधान बनाती है। दोनों का महत्त्व है, दोनों की आवश्यकता है। यदि हम इन्हें समान भाव से स्वीकार कर लें तो जीवन कभी बोझ नहीं लगेगा, बल्कि निरंतर सीख और विकास की यात्रा बन जाएगा। जीवन की यात्रा में हर मोड़ एक नया संदेश लेकर आता है।

सुख हमें आभार सिखाता है और दु:ख हमें आत्मबल देता है। मृत्यु हमें अनित्य का बोध कराती है और जन्म हमें नए अवसर प्रदान करता है। विपत्तियाँ हमारी छिपी हुई शक्तियों को उजागर करती हैं और उपलब्धियाँ हमें आत्मविश्वास देती हैं।

इसलिए सच्चा जीवन वही है, जिसमें मनुष्य हर परिस्थिति में संतुलित रहे, आशावादी दृष्टि रखे और ईश्वर की योजना पर विश्वास बनाए रखे। यही संतुलित दृष्टिकोण जीवन को सार्थक, सफल और शांति से परिपूर्ण बना देता है। ❑

रामबोला को नवविवाहिता पत्नी से इतनी आसक्ति हुई कि सब कुछ भूलकर, अनेक कष्टों को सहते हुए—मध्यरात्रि में पत्नी से मिलने पहुँचे। उनकी पत्नी, रत्नावली बोली—

हाड़-मांस की देह मम,
तासे इतनी प्रीति।
ऐसी जो श्रीराम में,
अवसि मिटहिं भवभीति॥

मांस-हड्डियों की बनी इस काया के प्रति जितनी तुम्हारी प्रीति है, यदि उसकी आधी भी तुम्हारी भगवान राम के प्रति होती तो तुम्हारे भव-बंधन खुल जाते।

यह बात उनके अंत:करण को छू गई। उन्होंने अपनी चेतना का परिष्कार आरंभ किया व तुलसीदास बन गए।

जीवन में आदर्श का महत्व



मनुष्य जीव धरती पर अनगढ़ रूप में आता है। क्रमिक रूप से विभिन्न साँचों में ढलकर यह रूपाकार लेता है और एक परिष्कृत व्यक्तित्व के रूप में सामने आता है। इसमें व्यक्ति द्वारा निर्धारित जीवनलक्ष्य का महत्त्व अपनी जगह रहता है, लेकिन इसमें आदर्श का चयन अपनी निर्णायक भूमिका निभाता है। इसी के साथ व्यक्ति का जीवन-ध्येय एक मिशन के भाव से मंडित होता है।

जीवन में समग्र उत्कर्ष के लिए विकास के विभिन्न पड़ावों पर आदर्श या रोल मॉडल की आवश्यकता रहती है। व्यक्ति उदाहरण से सीखता है, इस कारण आदर्श क्षेत्र विशेष में जीवंत उदाहरण का काम करते हैं, जिनको देखते हुए व्यक्ति जीवन की संभावनाओं से परिचित होते हैं और इनके साथ आवश्यक प्रेरणा एवं मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं।

अत: लौकिक हो या आध्यात्मिक क्षेत्र, आदर्श का वरण जीवन-यात्रा को सरल, सुगम और रोचक बनाता है। व्यक्तित्व का ढाँचा जाने-अनजाने में ही आदर्श के अनुरूप ढलता जाता है। बचपन में माता-पिता ही शिशु के लिए आदर्श होते हैं। उनको ही वह अपना जीवन आदर्श मानता है।

घर के बड़े बुजुर्ग भी आदर्श के रूप में उसके व्यक्तित्व को गढ़ने में अपनी भूमिका निभाते हैं। बचपन के अबोध पलों में इन आदर्शों का सही साँचा शिशु के उज्ज्वल भविष्य की नींव रखता है। यदि यह उत्कृष्ट रहा तो व्यक्ति जीवनभर माता-पिता एवं बड़े-बुजुर्गों के प्रति कृतज्ञता के भाव से भरा रहता है और किसी कारणवश यदि इन साँचों में खोट हुई तो फिर वह जीवनभर इसके अभिशाप के दंश को झेलने के लिए विवश-बाध्य रहता है और रह-रहकर इसके कटु अनुभवों के साथ मानवीय रिश्तों को कोसता फिरता है।

परिवार के आगे विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में शिक्षक आदर्श के रूप में साँचों का काम करते हैं। हर विद्यार्थी के जीवन में ऐसे आचार्यगण आते हैं, जिनके उपकार को वह जीवनभर याद रखता है कि किस तरह से उन्होंने जीवन के विकट पलों में उसे संबल देकर सँभाला था, किस तरह से जीवन के निर्णायक पलों में मार्गदर्शक बनकर जीवन की दिशा तय की थी; किस तरह कठिन पलों में संकटमोचक बनकर इनसे बाहर निकालने का मार्ग प्रशस्त किया था।

शिक्षण संस्थानों में अध्ययन के दौरान विद्यार्थी अपने-अपने क्षेत्रों के नायकों, महानायकों के संपर्क में आते हैं, जो उन्हें अभीष्ट दिशा में श्रेष्ठतम प्रदर्शन के लिए प्रेरित करते हैं। क्षेत्र शारीरिक हो या बौद्धिक, आर्थिक हो या सामाजिक-राजनीतिक या धार्मिक, हर क्षेत्र में शिखर पर पहुँचे व्यक्तित्व अमुक विद्या में आगे बढ़ने में तत्पर विद्यार्थियों के लिए आदर्श बनकर प्रेरित करते हैं, पथ-प्रदर्शक का काम करते हैं।

प्राय: विद्यार्थियों के कमरों में इन आदर्शों के चित्र जाने-अनजाने में टँगे मिलते हैं, जो उनके सपनों को उड़ान भरने के लिए आवश्यक प्रेरक ईंधन का कार्य करते रहते हैं। यहाँ चयनित आदर्शों में यदि कोई खोट, दुर्बलता या न्यूनता है, तो

इसका प्रभाव भी जाने-अनजाने में युवा चित्त की उर्वर भूमि पर अंकित होने लगता है।

ऐसे में जीवन उत्कर्ष के लिए आवश्यक प्रेरणा या अपेक्षित ऊर्ध्वगामी प्रवाह नहीं जुट पाता और जीवन किन्हीं मौलिक विसंगतियों के साथ ग्रस्त होने के लिए अभिशप्त होता है। अत: जीवन के आदर्श चयन में सामाजिक आदर्शों के साथ एक आध्यात्मिक आदर्श का होना आवश्यक रहता है। जिनका चरित्र आदर्शों की उच्चतम कसौटियों पर खरा उतरता हो व जिनको देखकर-पढ़कर-सुनकर जीवन की न्यूनताओं एवं मानवीय दुर्बलताओं पर विजयी होने की प्रेरणा हिलोरें मारती हो, जिनके उदाहरण से मानव जीवन की श्रेष्ठतम संभावनाओं को साकार करने का मार्ग प्रशस्त होता है।

वास्तव में जीवन के आदर्श की परिपूर्णता अध्यात्म के शिखर पर आरूढ़ ऐसे देवमानवों के रूप में ही आकर पूर्ण होती है, जो मानवीय चेतना के मर्मज्ञ रहे हों और जो जीवन काल में ही चेतना के शिखर पर प्रतिष्ठित हो गए हों। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि जीवन के विभिन्न पड़ावों में अपनी समझ एवं आवश्यकता के अनुरूप आदर्शों का चयन एक भूल थी। उनके चयन का व्यक्तित्व के विकास के क्रम में अपना सामयिक महत्त्व था।

क्रमिक रूप से व्यक्तित्व के विकास के लिए उनका संबल, मार्गदर्शन एवं उत्प्रेरणा समय की माँग थी। बहुआयामी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आदर्शों की विविधता स्वाभाविक है, जिनके साथ व्यक्ति आवश्यक प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन प्राप्त करता हो, लेकिन जीवन की परिपूर्णता के लिए अंत में जिस प्रकाशित प्रेरणापुंज की आवश्यकता होती है, उसकी पूर्ति आध्यात्मिक आदर्श में ही उपलब्ध हो पाती है।

जीवन को पूर्णता की मंजिल तक पहुँचाने के लिए एक समर्थ अवलंबन की आवश्यकता रहती है। शास्त्रीय परंपरा में इसे गुरु-तत्त्व कहा गया है, जो व्यक्ति को इष्ट से मिलाने का माध्यम बनता है और जीवात्मा को उसके वास्तविक स्वरूप से परिचय करवाता है।

शिष्य की अभीष्ट पात्रता विकसित होते ही ऐसे सद्गुरु का जीवन में पदार्पण होता है, जो शिष्य के जीवन की पूर्णता का पथ प्रशस्त करता है। ❑

ऋषि साधकों को जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण निर्देश दे रहे थे।

अध्यात्म पथ पर बढ़ने के लिए कौन-से सूत्र, जीवन के लिए आवश्यक हैं—उन्हें समझाते हुए वे बोले—"अध्यात्म पथ पर चलने वाले हर जिज्ञासु को एक ही तथ्य याद रखना चाहिए कि वह अपनी सामर्थ्य पर दृढ़ विश्वास रखे। याचनाएँ करने में समय जाया न करे। यदि साधक सुयोग्य होता है तो अवश्य ही प्रभुकृपा का पात्र बनता है। साधना पथ के पथिक के लिए ये सूत्र ही मूलमंत्र हैं।

मानवता को प्रकृति के संकेत



इस वर्ष ठंढी जलवायु के लिए जाने जाने वाले यूरोप के अधिकांश देशों को भीषण गरमी की लहर (ग्रीष्म लहर) का सामना करना पड़ा, जिससे जनजीवन अस्त-व्यस्त हो गया। हजारों बुजुर्ग इसकी विकरालता सहन न कर पाए और असमय ही काल-कवलित हो गए।

सड़कों के तारकोल पिघलने से लेकर रेल पटरियों के गलने से यातायात ठप पड़ गया। शिक्षण संस्थानों में छुट्टियाँ घोषित करनी पडीं और कई क्षेत्रों में स्थिति आपातकाल की हो गई। इस रिकॉर्ड तोड़ गरमी की लहर ने लोगों को सोचने के लिए विवश कर दिया कि यह प्रकृति का कौन-सा प्रकोप है, जिसे झेलने के लिए वो अभिशप्त हुए।

मालूम हो कि पारंपरिक रूप से यूरोप में गरमियों के तापमान का औसत न्यून रहा है, जिसके कारण यह गरमियों में छुट्टियाँ मनाने का एक आदर्श स्थल रहा है, जबकि वैश्विक तापमान वृद्धि के कारण वर्तमान समय में यूरोप का ग्रीष्मकालीन तापमान पुराने औसत की तुलना में रिकॉर्ड स्तर पर बढ़ रहा है।

इंग्लैंड और फ्रांस जैसे देशों में भी तापमान अब कई बार 35 से 40 डिगरी सेंटीग्रेड छूने लगा है। इस वर्ष—2026 की ग्रीष्म लहर ने तो पिछले सारे रिकॉर्ड ही ध्वस्त कर दिए, जिसमें तापमान 41 और 45 डिगरी सेंटीग्रेड के भी पार रहा। यह ग्रीष्म लहर मई अंत में प्रारंभ हुई और जून में अपने चरम पर रही तथा जुलाई तक इसका प्रभाव रहा। इस दौरान कई यूरोपीय देशों में तापमान 44 से 45 डिगरी सेंटीग्रेड के पार पहुँच गया, जो यहाँ के लिए अप्रत्याशित रूप से अधिक है।

स्पेन, इटली और फ्रांस सहित कई देशों के दर्जनों शहरों में इस कारण रेड अलर्ट जारी किया गया। इस तरह 2026 का जून यूरोप के इतिहास का सबसे गरम जून माह रहा। यूरोप के इतिहास की सबसे भीषण और रिकॉर्ड तोड़ गरमी की इस लहर (ग्रीष्म लहर) के कारण दस हजार मृत्यु के सरकारी आँकड़े मिलते हैं, जो विशेषज्ञों के अनुसार बीस हजार से अधिक हो सकते हैं। इनमें से अधिकांश 65 वर्ष से अधिक आयु के वरिष्ठ नागरिक थे।

इस ग्रीष्म लहर का मुख्य कारण हीट डोम को माना जा रहा है, जिसको ओमेगा ब्लॉक और मानवजनित जलवायु-परिवर्तन के साथ घातक संयोजन ने इसे विकराल बना दिया। हीट डोम के चलते मौसम वैज्ञानिकों के अनुसार, यूरोप के ऊपर उच्च वायुमंडलीय दबाव का एक क्षेत्र बन गया। यह एक ढक्कन की तरह गरम हवा को नीचे जमीन की तरफ दबा देता है, जिससे हवा सूखी और अत्यधिक गरम हो जाती है।

इसके साथ ओमेगा ब्लॉक के कारण बादलों का बनना और ठंढी हवाओं का आना पूरी तरह से रुक गया और सूर्य की सीधी किरणें धरती को लगातार तपाती रहीं। इसके साथ सहारा मरुस्थल से गरम हवाओं का आना, स्पेन के पश्चिम में बने एक कम दबाव के क्षेत्र के कारण उत्तरी अफ्रीका के सहारा मरुस्थल से अत्यधिक गरम और सूखी हवा तेजी से पश्चिमी और मध्य यूरोप की ओर खिंची चली आई, जिसने तापमान को अचानक रिकॉर्ड स्तर तक पहुँचा दिया। फिर जलवायु-परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग की इसमें अपनी भूमिका रही।

वर्ल्ड वेदर एट्रिब्यूशन (डब्ल्यू. डब्ल्यू. ए.) के वैज्ञानिकों के अनुसार जलवायु-परिवर्तन के बिना 2026 जैसी तीव्र गरमी का आना व्यावहारिक रूप से असंभव था। इसने दिन के तापमान को 10 गुना और रात के तापमान को 100 गुना अधिक संभावित बना दिया। इसके साथ समुद्री सतह के रिकॉर्ड तापमान की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

अटलांटिक महासागर और भूमध्य सागर का तापमान इस वर्ष रिकॉर्ड स्तर तक गरम रहा। इससे उपजी समुद्री ग्रीष्म लहर की अपनी भूमिका रही। फिर प्रशांत महासागर में सक्रिय अलनीनो प्रभाव के कारण वैश्विक तापमान का ग्राफ पहले से ही बढ़ा हुआ था, जिसने यूरोप में भी गरमी को और अधिक गंभीर बनाने में भूमिका निभाई।

इसके साथ विशेषज्ञों के मत में अर्बन हीट आइलैंड प्रभाव भी यहाँ लागू रहा। यूरोप में बढ़े शहरों में कंकरीट के भवन और डामर की सड़कें दिनभर गरमी को सोखती रहीं और रात को इसे धीरे-धीरे छोड़ती रहीं। इसके चलते रात का तापमान 20 डिगी सेंटीग्रेड के नीचे नहीं गिरा, जिन्हें ट्रॉपिकल नाइट्स कहा गया। इससे मानव शरीर को गरमी से उबरने का समय नहीं मिल पाया।

इस तरह हाहाकार मचाती यूरोप की इस प्रचंड गरमी में कई शहरों में तापमान के पुराने रिकॉर्ड टूट गए, जिसकी 50 वर्ष पूर्व कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। स्पेन में तापमान 40-45 डिगरी सेंटीग्रेड तक पहुँचा। आमतौर पर ठंढे रहने वाले उत्तरी क्षेत्र जैसे सैन सेबेस्टियन में तापमान 40 डिगरी सेंटीग्रेड तक पहुँचा।

लोग गरमी से बेहाल रहे, जिससे बचने के लिए कई शहरों में हीट रिफ्यूज बनाए गए। हीट रिफ्यूज अर्थात एयर कंडीशनर वाले सार्वजनिक भवन, जहाँ कोई भी जाकर गरमी से बच सकता है। फ्रांस के पश्चिमी इलाके बोर्डो में तापमान 42.2 डिगरी सेंटीग्रेड तक पहुँच गया, जिससे पिछले वर्ष अगस्त का रिकॉर्ड टूट गया।

मध्य फ्रांस के पोइटियर्स में तापमान 41.2 डिगरी सेंटीग्रेड तक पहुँच गया। पिस्सोस में तापमान 44.3 डिगरी सेंटीग्रेड रहा, जबकि राजधानी पेरिस में यह रिकॉर्ड 40.9 डिगरी सेंटीग्रेड रहा। इटली में इस दौरान 22 शहरों के लिए रेड अलर्ट जारी किया गया। इनमें रोम, मिलान, फ्लोरेंस और ट्यूरिन जैसे प्रमुख शहर शामिल हैं। पोलैंड के पश्चिमी हिस्से भीषण गरमी से प्रभावित रहे। वहीं क्रोएशिया और हंगरी में भी गरमी को देखते हुए रेड अलर्ट जारी किया गया।

जर्मनी के बर्लिन और देश के दक्षिणी-पश्चिमी हिस्सों में अधिकतम तापमान 38 से 39 डिगरी सेंटीग्रेड के आस-पास बना रहा। ब्रिटेन के मध्य और दक्षिणी क्षेत्रों तथा वेल्स के लोगों को स्वास्थ्य चेतावनियाँ और रेड अलर्ट जारी किए गए।

यह केवल दूसरी बार है, जब ब्रिटिश अधिकारियों ने इस स्तर की चेतावनी जारी की है। इससे पहले जुलाई, 2022 में तापमान 40 डिगरी सेंटीग्रेड से ऊपर पहुँचने पर ऐसी चेतावनी जारी की गई थी।

भीषण गरमी के कारण इंग्लैंड में 1000 से अधिक स्कूल बंद कर दिए गए या जल्दी छुट्टी दी गई। एसी और कूलिंग सिस्टम की माँग अचानक 420% तक बढ़ गई। गरमी में रेल पटरियाँ मुड़ने से रेल यातायात प्रभावित रहा। गरमी के कारण रेल पटरियों के मुड़ने और ओवरहेड बिजली तारों के ढीले पड़ने जैसी समस्याओं से बचने के लिए रेलगाड़ियों की गति पर भी प्रतिबंध लगाए गए।

गरम मौसम की आशंका को देखते हुए लंदन और पेरिस के बीच संचालित होने वाली ट्रेनों को रद्द करना पड़ा। अत्यधिक सूखे और

गरमी के कारण फ्रांस, क्रोएशिया और स्पेन के जंगलों में भयंकर आग लग गई, जिसे बुझाने के लिए सेना और विशेष विमानों की मदद ली जाती रही।

इस तरह गरमियों में यूरोप की दो-तिहाई जनता को 35 डिगरी सेंटीग्रेड से अधिक गरमी में तपना पड़ा। भारत में 40-45 डिगरी सेंटीग्रेड तापमान सामान्य बात मानी जाती है, लेकिन यूरोप के लिए यह घातक सिद्ध हुई; क्योंकि यूरोप के अधिकांश घरों, स्कूलों और अस्पतालों में वातानुकूलन की व्यवस्था नहीं है, क्योंकि वहाँ ऐतिहासिक रूप से ठंढी जलवायु रही है।

दूसरा, वहाँ भीषण गरमी के दौरान रात में भी तापमान नीचे नहीं गिर रहा था, जिससे शरीर को ठंढा होने का अवसर नहीं मिल पा रहा था। तीसरा, यूरोप में बुजुर्गों की संख्या अधिक है, जो इस अत्यधिक तापमान और हीट स्ट्रोक के प्रति सबसे ज्यादा संवेदनशील रही।

इस तरह यूरोप में 2026 की भीषण ग्रीष्म लहर वैश्विक स्तर पर बढ़ते जलवायु संकट का एक गंभीर प्रमाण है, जिससे पूरे विश्व को बुनियादी ढाँचे और सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रबंधन में अहम परिवर्तन करने की सीख मिलती है।

ठंढी जलवायु के लिए जाने जाने वाले यूरोप में तापमान का 41 से 44 डिगरी सेंटीग्रेड के पार जाना भविष्य के लिए बड़े सबक छोड़ गया है, जो भारत जैसे गरम देशों के लिए भी बेहद महत्त्वपूर्ण है, जहाँ पहले से ही भीषण गरमी पड़ती है।

यूरोप का यह संकट चेतावनी है कि मौसम का यह परिवर्तन अब और अधिक अनपेक्षित और तीव्र होगा, जिसके लिए तात्कालिक नहीं, बल्कि आगामी दो-तीन दशकों को ध्यान में रखकर दीर्घकालिक नीति बनानी होगी। इसके लिए कंकरीट के जंगलों को कम कर कस्बों व शहरों में हरे पार्क, वन और जलाशयों का निर्माण प्रोत्साहित करना होगा।

गरमी को प्रतिबिंबित करने वाली छतों व भवनों के निर्माण की व्यवस्था करनी होगी। कार्य समय में बदलाव करने होंगे। अत्यधिक लू के दिनों में दोपहर के बाहरी कार्य की जगह प्रातः जल्दी या देर शाम के वैकल्पिक कार्य समय को अपनाना होगा।

इसके साथ जल संरक्षण, पावर ग्रिड की मजबूती, कूलिंग शेलटरों का निर्माण आदि भी विचारणीय हैं। साथ ही गरमीरोधी कृषि को अपनाना होगा, जो कम जल और अधिक गरमी में भी पैदावार देने में सक्षम हो।

सर्वोपरि जलवायु-परिवर्तन की आगत चुनौती को देखते हुए पर्यावरण संरक्षण के ठोस उपायों पर काम करना होगा। ❑

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

—यजुर्वेद, 19/30

अर्थात मनुष्य व्रत से दक्षता को प्राप्त करता है, दक्षता से प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है, प्रतिष्ठा से श्रद्धा की प्राप्ति होती है और श्रद्धा से सत्य को प्राप्त करता है।

धर्म और संस्कृति संरक्षिका, अहिल्याबाई होल्कर



भारतीय जीवन में धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना की पोषक और संवाहक नारी शक्ति ही रही है। हमारे धर्म और संस्कृति की सनातन धारा में नारी का स्वरूप सदैव दैवी, पूज्या और शक्ति स्वरूपिणी रहा है।

मैत्रेयी, गार्गी, मदालसा, अरुंधती, अनसूया से लेकर वीर पुत्री अहिल्याबाई, रानी दुर्गावती, महारानी लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगनाओं ने भारतीय संस्कृति के उच्चतम आदर्शों, मूल्यों, दिव्य परंपराओं और स्वाभिमान के लिए सर्वस्व त्याग, समर्पण कर नारी जीवन को श्रेष्ठतम गरिमा प्रदान की है।

वैसे तो ज्ञानी, विदुषी वैदिक ऋषिकाओं से लेकर आधुनिक युग तक ऐसे नारी-आदर्शों के जीवन-चरित्र की समृद्ध-सुदीर्घ परंपरा हमारी भारतभूमि पर विस्तीर्ण है। इनमें हरेक का जीवन प्रेरणा और पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है। इतिहास के प्रत्येक कालखंड में नारी की गरिमा और आदर्श को प्रकाशस्तंभ की भाँति स्थापित करने वाली महान एवं दिव्य नारी शक्तियाँ विद्यमान रही हैं।

इन नारी शक्तियों ने अपने-अपने समय में तप, त्याग, शौर्य, साहस, सेवा, समर्पण, स्नेह और मातृत्व की शक्ति से सतत हमारे धर्म, संस्कृति, समाज और जीवन को पोषित कर समृद्ध और चैतन्य बनाए रखा है। धर्म, संस्कृति एवं राष्ट्र पर आने वाले हरेक संकट में नारी शक्ति ने भी अग्रणी भूमिका निबाहते हुए महान आदर्श स्थापित किए हैं। ऐसी ही भारत की आदर्श नारियों की दिव्य शृंखला में एक अप्रतिम, अद्वितीय आदर्श नारी हैं—देवी अहिल्याबाई होल्कर।

अहिल्याबाई का जन्म सन् 1725 ई० में औरंगाबाद (वर्तमान में संभाजी नगर) जिले के चोट नामक ग्राम में मानकोजी शिंदे के घर हुआ था। बाल्यकाल से ही उनमें अनेक अद्भुत गुण थे, जिसमें से एक यह भी था कि वे जब तक दैनिक पूजन और पुराणों की कथाओं का श्रवण नहीं करती थीं, तब तक भोजन भी ग्रहण नहीं करती थीं।

देवी अहिल्याबाई का प्रारंभिक जीवन भी अत्यंत चुनौतीपूर्ण रहा। लगभग 10 वर्ष की उम्र में मालवा साम्राज्य के मल्हार राव होल्कर के पुत्र खांडेराव से उनका विवाह हुआ और यहीं से उनके नाम के साथ होल्कर साम्राज्य का संबंध जुड़ गया।

गृहस्थी के संपूर्ण कार्यों का स्वयं निर्वहन करते हुए नियमित कथाश्रवण, पूजन, दान करना तथा समय-समय पर राजकार्यों में भी सहयोग करना उनकी आदर्श दिनचर्या का हिस्सा था। इन्हीं विशिष्टताओं के कारण राज्य एवं परिवारजनों के भीतर उनके प्रति अत्यंत आदर, सम्मान और स्नेह का भाव उत्पन्न हो गया था, परंतु उनके समक्ष आंतरिक जीवन और बाहरी समाज में व्याप्त अशांति, लूट-मार, भय, विग्रह आदि की अनेक चुनौतियाँ भी विद्यमान थीं।

वीरांगना बनकर राज्य में फैली दुष्प्रवृत्तियों को समाप्त करते हुए उन्होंने राष्ट्र, धर्म, संस्कृति और समाज के उत्थान एवं कल्याण में सर्वस्व जीवन समर्पित कर दिया था। अहिल्याबाई ने

लगभग 30 वर्ष तक अपने आज्ञाकारी एवं सच्चे सेवक तुकोजी राव होल्कर के सहयोग से होल्कर राज्य का शासन चलाया।

अपने शासनकाल में सुव्यवस्था, सुशासन, न्याय, नीति, आदर्श, धर्म, संस्कृति, समानता, एकता जैसे आदर्श मूल्यों को उन्होंने स्वयं के जीवन से चरितार्थ करते हुए एक आदर्श राज्य-संचालन का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

धर्म, संस्कृति की सुरक्षा और उनका पोषण देवी अहिल्याबाई के लिए सर्वोपरि था। उनके बहुआयामी जीवन के अनुरूप ही उनकी विशेष जीवनचर्या में धार्मिक और सांस्कृतिक आदर्शों को अंतिम क्षणों तक अपनाए रखने की विशिष्टता समाहित है।

व्यक्तिगत जीवन में भारतीय आदर्श गृहिणी की भाँति व्रत, उपवास, अनुष्ठान, दान-पुण्य तथा साथ-साथ राजनीतिक कर्त्तव्य, परिवार-समाज के कार्य व धर्म, संस्कृति एवं पर्व आदि से संबंधित क्रियाकलापों का उनकी जीवनचर्या में समुचित स्थान था।

इतिहास के पृष्ठों में ऐसी धर्मपरायणा और संस्कृतिपोषक नारी आदर्श के रूप में एकमात्र अहिल्याबाई का जीवन ही दिखाई पड़ता है। ब्रह्मवेला में उठकर वे नित्यकर्मों से निवृत्त हो पूजा करने बैठ जाती थीं। नियमित पूजा के क्रम में ही श्रेष्ठ और योग्य ब्राह्मणों द्वारा पूजन-स्थल पर ही बैठे-बैठे पुराणों, रामायण, महाभारत आदि का श्रवण करती थीं।

इसके उपरांत अपने राजमहल के द्वार पर प्रतिदिन सैकड़ों ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा तथा भिखारियों को भिक्षा प्रदान करती थीं। दान एवं भिक्षा का क्रम पूर्ण होने पर यह भी नियम था कि पहले से आमंत्रित किए गए ब्राह्मणों को स्वयं भोजन करातीं, उसके पश्चात ही स्वयं सादा, सात्त्विक भोजन ग्रहण करती थीं।

दैनिक क्रम में अहिल्याबाई भोजन के पश्चात कुछ समय विश्राम करती थीं, फिर साधारण वेशभूषा में अपनी राजसभा पहुँचकर सायंकाल तक पूर्ण तन्मयता एवं सावधानी से राजकार्यों को संपन्न करती थीं। सायंकाल अपनी राजसभा विसर्जित कर संध्याकाल में पुनः तीन घंटे भजन-पूजन में व्यतीत करना उनकी दिनचर्या का अभिन्न हिस्सा था।

घोंसले में बैठे नन्हे-से परिंदे ने पर फड़फड़ाए और सहमकर जहाँ था, वहीं चिपककर बैठ गया।

बच्चे को भयभीत देख माँ ने उसे घोंसले से धकेलते हुए कहा—"जब तक तू डरना नहीं छोड़ेगा, तुझे उड़ना कैसे आएगा?" परिंदे ने हिम्मत जुटाई और दूसरे ही पल आकाश में उड़ गया। साहस के बिना कोई उपलब्धि प्राप्त नहीं होती।

इसके बाद फलाहार ग्रहण कर राज्य के प्रधान सेवकों को बुलाकर व्यवस्था, प्रबंधन, आय-व्यय आदि पर मंत्रणा व निर्देशन करतीं, तब जाकर लगभग रात्रि ग्यारह बजे के बाद ही शयन कक्ष में प्रवेश करती थीं।

उल्लेखनीय है कि उनकी राजसभा में सामान्य नागरिकों, प्रजाओं के लिए बिना किसी मध्यस्थता के देवी अहिल्याबाई के पास सीधे जाकर अपने दुःख, कष्ट, समस्या बताने का प्रावधान था। साथ ही उनके राज्य में वर्षपर्यंत होने वाले धर्म, संस्कृति

संबंधी पर्व-त्योहारों, उत्सवों, समारोहों को भी वे अत्यंत भव्यता से मनाती थीं।

उनका व्यक्तिगत जीवन पूर्णरूपेण धार्मिकता से ओत-प्रोत तपस्विनी का था और उनका राजनीतिक जीवन एक महान कुशल साम्राज्ञी का। उनके शासन को एक श्रेष्ठतम आदर्श के रूप में देखा जाता है, परंतु इससे भी ज्यादा उनके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के आयामों का विस्तार देखा जा सकता है।

भारतभूमि पर चारों दिशाओं में उनके द्वारा देवस्थानों, तीर्थों, मंदिरों, कुओं, तालाबों, बावड़ियों, धर्मशालाओं आदि के निर्माण, पुनरुत्थान के कार्य सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं। सच्चे अर्थों में देवी अहिल्याबाई का जीवन-चरित्र भारतीय धर्म-संस्कृति में प्रकाशित आत्मा का प्रतीक और पर्याय है। यद्यपि मध्य भारत के मालवा प्रांत महेश्वर की महारानी के रूप में उनके जीवन का चित्रण किया जाता है, परंतु उनकी धर्मपरायणता और संस्कृतिनिष्ठा के प्रत्यक्ष प्रमाण भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत में इनके द्वारा कराए गए कल्याणकारी कार्यों के रूप में फैले हैं।

उनका जीवन भारतीय इतिहास का एक ऐसा विलक्षण उदाहरण है, जहाँ किसी रानी को उनकी प्रजा द्वारा मातृवत् देवी के रूप में देखा और पूजा गया तथा रानी ने भी अपनी प्रजा को पुत्रवत् स्नेह-संरक्षण और ममत्व लुटाया। संपूर्ण देश सदा उनके प्रति अगाध श्रद्धा, सम्मान और गर्व की भावना से ओत-प्रोत रहा है। देवी अहिल्याबाई का जीवन भारतीय नारी आदर्शों का एक अद्वितीय-अनुपम उदाहरण है।

ऐसी नारी, जिसने साधारण परिस्थितियों में जन्म लिया तथा कल्पना से भी परे विषम परिस्थितियों, संकटों के बीच अपने जीवन-चरित्र को एक महान आदर्श के रूप में गढ़ा तथा इतिहास के ऐसे स्वर्णिम अध्याय को रच डाला, जिसका प्रकाश अनंत काल तक भारत की धर्म-संस्कृति की आत्मा बनकर दीप्तिमान बना रहेगा। ❑

घनघोर अँधेरे में झरना अपने अविरल प्रवाह से कल-कल करता बहा चला जा रहा था।

मार्ग में मिली एक पहाड़ी उपत्यिका ने पूछा—"निर्झर! तुम लगातार चले जा रहे हो, तुम्हें थकावट नहीं आती क्या? जरा ठहरो तो, यहाँ विश्राम कर लो।"

उपत्यिका पर एक प्रेमपूर्ण दृष्टि डालते हुए झरने ने कहा—"बहन! मुझे जिस महासागर से मिलना है, वह तो अभी मीलों दूर है। अपने उद्देश्य को प्राप्त किए बिना इस जीवन का कोई मूल्य नहीं।"

उपत्यिका उसे प्रशंसापूर्ण दृष्टि से देखती रह गई।

टिटिहरी का रोचक संसार



टिटिहरी एक बहुत ही सतर्क एवं जुझारू पक्षी है, जो खुले मैदान, खेत और जलाशयों के पास विचरण करती है। इसके साथ कई रोचक किंवदंतियाँ जुड़ी हुई हैं, जो इसे एक रोचक पक्षी बनाती हैं, जिसमें मौसम के पूर्वानुमान से लेकर पारस पत्थर से अंडों को फोड़ने, आसमान को पैरों से थामने तथा सागर को खाली करने की जिद जैसे किस्से लोक जीवन में प्रचलित हैं। यहाँ प्रस्तुत है टिटिहरी से जुड़ा रोचक संसार, इसका निराला व्यवहार एवं यथार्थ की कसौटी पर इससे जुड़े रहस्यों का वास्तविक संसार।

किंवदंती है कि टिटिहरी का एक जोड़ा समुद्र के किनारे रहता था। मादा टिटिहरी ने अंडे देने के लिए किसी सुरक्षित स्थान खोजने को कहा, लेकिन टिटिहरे को विश्वास था कि समुद्र हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जब वे भोजन की तलाश में बाहर गए तो पीछे से समुद्री ज्वार उनके अंडे भी अपने साथ बहा ले गया। जब टिटिहरी वापस आई तो यह देखकर दु:खी हुई और बहुत रोई।

टिटिहरे ने फैसला लिया कि वह समुद्र का पानी सुखाकर अंडे वापस लेगा और अपनी चोंच में पानी भर-भरकर बाहर फेंकने लगा। जब शेष पक्षियों ने यह सब देखा तो पक्षियों के राजा गरुड़ को बताया। विष्णु भगवान के वाहन गरुड़ ने समुद्र को डराया-धमकाया तो वह भयभीत होकर टिटिहरी के अंडे वापस करने आया।

इस तरह नन्हे-से पक्षी के जीवट की जीत हुई। कहानी का सार इतना ही है कि टिटिहरी अपने अंडों की रक्षा के लिए बहुत सजग एवं आक्रामक रहती है और इसके लिए वह दिन हो या रात चौकन्ना रहती है और पूरे जुझारूपन एवं साहस के साथ खतरों का सामना करती है।

टिटिहरी अन्य पक्षियों की तरह पेड़ों पर अपना घोंसला नहीं बनाती। तालाब, नदी के किनारे, खुले खेत या मैदान में थोड़ा-सा गड्ढा करके या कंकड़ों के बीच अपने अंडे देती है। इसके अंडों का रंग हलके भूरे या मिट्टी के रंग का होता है, जिस पर काले धब्बे होते हैं। इस कारण ये अंडे आसानी से दूसरों को नजर नहीं आते।

टिटिहरी के झाड़ या पेड़ पर न बैठ पाने का कारण यह है कि इसके पैरों में पीछे की उँगली नहीं होती। जिस कारण यह पेड़ों की शाखाओं को पकड़ने या उन पर संतुलन बनाने में असमर्थ होती है।

टिटिहरी के पैरों में आगे की ओर दो उँगलियाँ होती हैं, लेकिन पीछे की उँगली विकसित नहीं होती है। जबकि पेड़ की टहनियों पर बैठने और उसे मजबूती से पकड़ने के लिए पैरों के पीछे की उँगली का होना आवश्यक होता है। प्रकृति ने इस कमी को पूरा करने के लिए टिटिहरी को लंबे-लंबे पैर दिए हैं, जिनके सहारे यह बहुत तेज दौड़ सकती है और अपने बचाव से लेकर आक्रमण एवं शिकार कर सकती है।

जहाँ तक आहार की बात है, तो टिटिहरी मुख्य रूप से एक मांसाहारी पक्षी है। इसका मुख्य भोजन भूमि पर मिलने वाले छोटे कीड़े-मकोड़े रहते हैं। कीड़ों में भृंग, च्यूँटियाँ, टिड्डे, दीमक, विभिन्न कीड़ों के लार्वा शामिल हैं। इसके अतिरिक्त

केंचुए, घोंघे और छोटे अकशेरुकी जीव भी इसका आहार बनते हैं।

कभी-कभी यह छोटी वनस्पतियों और अन्न का भी सेवन कर लेती है। लगभग 8 इंच लंबे इस रोचक पक्षी का जीवनकाल लगभग 12 वर्ष का रहता है। इसका भार 200 से 250 ग्राम होता है। इसके पैर बहुत पतले और लंबे होते हैं। इसके शरीर का मुख्य रंग भूरा, काला और सफेद होता है। इसकी आँखों के पास लाल रंग का मांस का टुकड़ा होता है, जिस कारण इसे रेड-वेटल्ड लेपविंग भी कहा जाता है, जो भारत में पाई जाने वाली टिटिहरी की प्रमुख प्रजाति है।

भारत में इसे विभिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे—टिटोड़ी, टिटौली, टिटिहरी आदि। इसका वैज्ञानिक नाम वेनेलस इंडिकस है। टिटिहरी का प्रजननकाल मार्च से अगस्त तक रहता है। नर और मादा में भेद करना कठिन होता है। एक समय में मादा टिटिहरी तीन से चार अंडे देती है, जिनसे चूजे निकलने का समय लगभग चार सप्ताह का रहता है।

खतरे का आभास होने पर टिटिहरी जोर-जोर से शोर मचाना प्रारंभ करती है। अपने अंडों की सुरक्षा के लिए टिटिहरी बहुत ही आक्रामक एवं सतर्क रहती है। जब कोई मनुष्य, जानवर या शिकारी उसके अंडों के पास आता है, तो वह जोर-जोर से चिल्लाकर आसमान के चक्कर लगाती है और उसे डराने व दूर भगाने का पुरजोर प्रयास करती है।

लोकमान्यताओं के अनुसार एक रहस्यमयी किंवदंती टिटिहरी से जुड़ी हुई है, जिसके अनुसार टिटिहरी अपने अंडों को पारस पत्थर की सहायता से फोड़ती है। मान्यता है कि यह जादुई पत्थर को अपनी चोंच में दबाकर अंडों को स्पर्श करती है, जिससे वे फूट जाते हैं। हालाँकि अभी तक इसके कोई वैज्ञानिक साक्ष्य नहीं मिले हैं और चूजे स्वयं अपनी चोंच से अंडों को फोड़कर बाहर निकलते हैं।

टिटिहरी के चूजे अंडों से बाहर निकलते ही माँ के पीछे दौड़ने लगते हैं। नवजात चूजों पर टिटिहरी का जोड़ा सजग निगाह रखता है और खतरा भाँपने पर आसमान में उड़ते हुए तीखी ध्वनि निकालता है, जिससे चूजे घास या झाड़ियों में सुरक्षित छिपे रहें। कभी-कभी चिल्लाने के साथ शिकारियों को भ्रमित करने के लिए टिटिहरी घायल होने का नाटक भी करती है, जिससे शिकारी का ध्यान चूजों से हटकर उस पर केंद्रित हो।

कहा जाता है कि टिटिहरी भूमि पर ही सोती है और उस समय अपने दोनों पैरों को ऊपर की ओर किए रहती है। इसके पीछे लोकमान्यता है कि टिटिहरी को भय रहता है कि कहीं आसमान उसके अंडों पर न गिर जाए, इसलिए वह अपने अंडों की रक्षा के लिए आसमान को थामने की मुद्रा में पैर ऊपर करके सोती है। यह तथ्य है कि टिटिहरी भूमि पर आराम करते समय या अपने अंडे देते समय कई बार अपने पैर ऊपर करके बैठती है।

वैज्ञानिक मत में यह भूमि के खतरों से स्वयं को बचाने के लिए पक्षी की एक प्राकृतिक रक्षात्मक मुद्रा है, इसमें आसमान थामने जैसी कोई बात नहीं, जिसे लोगों ने संभवतः बात को रोचक बनाने के लिए जोड़ा है। टिटिहरी की नींद भी अनोखी रहती है। टिटिहरी उन पक्षियों में से है जो अपनी एक आँख खुली रखकर और मस्तिष्क के एक हिस्से को जगाकर सो सकती है, जिससे खतरा होने पर यह तुरंत उठकर फिर जोर-जोर से चिल्लाने लगती है।

लोकमान्यताओं के अनुसार, टिटिहरी के अंडे देने के स्थान से वर्षा का सटीक अनुमान लगाया

जा सकता है। मौसम विभाग के पूर्वानुमान से पहले किसान टिटिहरी के व्यवहार को देखकर मौसम का अनुमान लगाया करते थे। यदि यह पक्षी अपने अंडों को किसी बहुत ऊँचे स्थान या सामान्य जल-स्तर से ऊपर देता है, तो इसे भारी बारिश या बाढ़ का पूर्व-संकेत माना जाता है।

वहीं, यदि यह समतल या सूखे मैदान में अंडे देती है, तो कम बारिश या सूखे का संकेत माना जाता है। इस रूप में किसान टिटिहरी को अपना मित्र मानते रहे हैं। साथ ही टिटिहरी खेतों में पाए जाने वाले कीट-पतंगों को अपना आहार बनाती है। प्राय: जब भी जुताई या बुवाई होती है तो यह बैलगाड़ी या ट्रैक्टर के पीछे मिट्टी से निकलने वाले कीड़ों को खाते हुए देखी जा सकती है।

टिटिहरी किसानों को जल के स्रोत का भी संकेत देती है। विशेषज्ञ भी मानते हैं कि टिटिहरी जहाँ भी होगी, उसके आस-पास जल का स्रोत अवश्य होगा। जल के स्रोत के कारण ही नमी वाले क्षेत्र में यह स्वयं व चूजों के लिए छोटे जीवों को आहार के रूप में सहजता से खोज पाती है।

इस तरह दिन-रात सजग रहकर अपने अंडों व बच्चों की रक्षा हेतु शोर करने वाली टिटिहरी एक सामान्य पक्षी नहीं है, यह किसानों का मित्र है, सजगता, साहस, बुद्धिमत्ता एवं जुझारूपन का प्रतीक है।

इनसान इस रोचक पक्षी से बहुत कुछ सीख सकता है। लोककथाओं में इस नन्हे-से पक्षी से जुड़ी रोचक एवं रोमांचक किंवदंतियाँ संभवत: इन्हीं विशेषताओं के आधार पर गढ़ी गई हैं। अगली बार जब भी टिटिहरी की आवाज आपके कानों में गूँजे तो आप इन तथ्यों के प्रकाश में इस पक्षी के रोचक संसार का अवलोकन कर सकते हैं। ❑

राहगीर ने राह में गड़े मील के पत्थर की ओर देखा और ताना दिया—"भला तुम्हारा जीवन भी कोई जीवन है, जो एक ही जगह स्थिर है। मुझे देखो मैं सारी दुनिया के भ्रमण का आनंद लेता हूँ और तुम हो कि एक जगह गड़ गए हो, हिलने का नाम नहीं लेते हो।"

मील का पत्थर हँसा और बोला—"मित्र! पेंडुलम हिलता-डुलता तो बहुत है, पर पहुँचता कहीं नहीं; वैसे ही उद्देश्यविहीन भ्रमण किसी काम का नहीं। मैं एक उद्देश्य के लिए समर्पित हूँ और इसीलिए दूसरों को दिशा दे पाता हूँ, चाहे स्वयं कहीं न जाऊँ।"

शांतिकुंज — वंदनीया माताजी की तपोभूमि



भारतीय अध्यात्म की महान परंपरा में कुछ तीर्थ ऐसे होते हैं, जिनकी पवित्रता केवल वहाँ स्थापित मंदिरों, आश्रमों अथवा भवनों के कारण नहीं होती; बल्कि वहाँ संपन्न हुई साधना, तप और आत्मसमर्पण के कारण होती है। नैमिषारण्य, शुक्रताल, बदरीनाथ और कुरुक्षेत्र जैसे तीर्थों की महिमा उनके भूगोल से अधिक उनके अध्यात्म में निहित है। आधुनिक युग में यदि किसी स्थान ने इसी ऋषि परंपरा को पुनर्जीवित किया है, तो वह है शांतिकुंज।

करोड़ों लोगों के लिए यह केवल एक आश्रम नहीं, बल्कि युगचेतना का केंद्र, ऋषि संस्कृति का जीवंत विश्वविद्यालय और साधना की दिव्य प्रयोगशाला है, परंतु शांतिकुंज की इस महान गरिमा के पीछे यदि किसी एक महाशक्ति का सबसे अधिक योगदान है, तो वह है—वंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा जी का अखंड तप, मौन साधना और मातृभाव।

आज शांतिकुंज का विशाल स्वरूप देखकर सहज ही यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि इसकी नींव कितनी कठिन तपश्चर्या, कितने त्याग और कितने आत्मसमर्पण पर रखी गई थी। यह स्थान किसी आर्थिक सामर्थ्य, प्रशासनिक योजना अथवा बाहरी संसाधनों से नहीं बना; इसकी वास्तविक आधारशिला वंदनीया माताजी की तपशक्ति थी। पूज्य गुरुदेव ने जिस युग-परिवर्तन के महान स्वप्न को देखा, उसे धरती पर साकार करने के लिए जिस दिव्य ऊर्जा की आवश्यकता थी, उसका संवहन वंदनीया माताजी ने अपने तप द्वारा किया।

शांतिकुंज का इतिहास वस्तुतः साधना का इतिहास है। यहाँ प्रत्येक ईंट, प्रत्येक वृक्ष और प्रत्येक प्रार्थना के पीछे तप की सुगंध समाहित है। प्रारंभिक दिनों में यहाँ न सुविधाएँ थीं, न पर्याप्त संसाधन और न ही भविष्य की उस विराट कल्पना का कोई बाह्यस्वरूप, किंतु वंदनीया माताजी के अंतःकरण में यह अटल विश्वास था कि जहाँ तप है, वहाँ ईश्वर की शक्ति अवश्य अवतरित होती है।

वे जानती थीं कि कोई भी आध्यात्मिक आंदोलन भवनों से नहीं, बल्कि साधना से खड़ा होता है। इसीलिए शांतिकुंज के आरंभ से ही उन्होंने एक ऐसे संकल्प को अपने जीवन का केंद्र बनाया, जिसने आगे चलकर इस स्थान की आत्मा का रूप धारण कर लिया। यह संकल्प था—अखंड दीपक के प्रकाश को अखंड बनाए रखने का।

उनके लिए यह दीपक केवल अग्नि की लौ नहीं था; वह युगऋषि की साधना, ऋषि परंपरा की चेतना और गायत्री महाशक्ति की निरंतर उपस्थिति का प्रतीक था। वंदनीया माताजी का विश्वास था कि जब तक यह ज्योति प्रज्वलित रहेगी, तब तक ऋषिचेतना का प्रवाह भी अविच्छिन्न बना रहेगा।

इस अखंड दीप के समक्ष उन्होंने एक ऐसा अलौकिक साधना अभियान प्रारंभ कराया, जिसकी तुलना आधुनिक युग में दुर्लभ है। देवकन्याओं के साथ निरंतर गायत्री महापुरश्चरणों की शृंखला प्रारंभ हुई। दिन-रात मंत्रजप, उपासना, ध्यान और तप का ऐसा वातावरण निर्मित किया गया कि शांतिकुंज धीरे-धीरे केवल एक संस्थान न रहकर एक जीवंत तपोभूमि बन गया।

यह साधना किसी व्यक्तिगत सिद्धि के लिए नहीं थी। इसका उद्देश्य था—मानवचेतना का परिष्कार, वातावरण का आध्यात्मिक परिमार्जन और युग निर्माण के लिए आवश्यक दिव्य शक्ति का संचय।

भारतीय शास्त्र कहते हैं—**'तपो हि परमं बलम्'**—तप ही सर्वोच्च बल है। वंदनीया माताजी ने इस सत्य को जीवन में चरितार्थ कर दिखाया। वे भली भाँति जानती थीं कि संगठन की वास्तविक शक्ति संख्या से नहीं, साधना से उत्पन्न होती है। इसलिए उन्होंने शांतिकुंज में आने वाले प्रत्येक साधक को यह अनुभव कराने का प्रयास किया कि यहाँ का वातावरण सामान्य नहीं है।

यह उन असंख्य जपों, अनुष्ठानों, मौन तपों और ऋषि-संकल्पों से निर्मित आध्यात्मिक ऊर्जा का क्षेत्र है। वंदनीया माताजी स्वयं इस साधना की केंद्र बिंदु थीं। प्रातःकालीन उपासना से लेकर रात्रि की प्रार्थना तक उनका प्रत्येक क्षण अनुशासन और साधना से अनुप्राणित रहता था।

संगठन का संचालन, हजारों परिजनों से मिलना, उनकी समस्याएँ सुनना, अतिथियों का स्वागत करना और साथ ही अपनी नियमित उपासना में कभी शिथिलता न आने देना—यह सब उनके जीवन का सहज क्रम था। उन्हें देखकर प्रतीत होता था कि कर्म और ध्यान, सेवा और साधना, मातृत्व और तप—सभी एक ही जीवनधारा में प्रवाहित हो रहे हैं।

शांतिकुंज में रहने वाले अनेक वरिष्ठ परिजनों ने अनुभव किया कि वंदनीया माताजी का सबसे बड़ा प्रभाव उनके शब्दों से नहीं, उनकी उपस्थिति से पड़ता था। उनके समीप बैठते ही मन की चंचलता शांत होने लगती थी। ऐसा लगता था मानो कोई अदृश्य शक्ति अंतर्मन को स्पर्श कर रही हो।

यही तप का वास्तविक प्रभाव है। तपस्वी अपने उपदेशों से कम और अपने व्यक्तित्व से अधिक शिक्षित करता है। यही कारण है कि शांतिकुंज का वातावरण आज भी सामान्य आश्रमों से भिन्न अनुभव होता है। यहाँ आने वाला साधक केवल प्रवचन नहीं सुनता, बल्कि साधना की एक जीवंत धारा का अनुभव करता है। यह धारा किसी एक दिन में नहीं बनी।

इसके पीछे वर्षों तक अखंड दीप के समक्ष संपन्न हुए महापुरश्चरण, अनगिनत जप, यज्ञ, मौन तप और वंदनीया माताजी की अविराम साधना का संचय है। वंदनीया माताजी ने देवकन्याओं के निर्माण को भी शांतिकुंज की साधना का अनिवार्य अंग बनाया।

उनके लिए देवकन्याएँ केवल कार्यकर्त्रियाँ नहीं थीं, बल्कि भावी युग की संस्कृति वाहिकाएँ थीं। उन्होंने उन्हें केवल संगठन संचालन का प्रशिक्षण नहीं दिया, बल्कि साधना, अनुशासन, पवित्रता और आत्मसमर्पण का जीवन जीना सिखाया।

अखंड दीप के सम्मुख संपन्न होने वाले महापुरश्चरणों ने उनके व्यक्तित्व को भी उसी ऋषि परंपरा से जोड़ दिया, जिसका स्वप्न युगऋषि ने देखा था। वंदनीया माताजी का यह दृढ़ विश्वास था कि यदि साधना की धारा अखंड बनी रही, तो संगठन का विकास अपने आप होता रहेगा। इतिहास इस सत्य का साक्षी है।

शांतिकुंज का विस्तार किसी प्रचार अभियान का परिणाम नहीं था। उसकी वास्तविक शक्ति उसकी आध्यात्मिक विश्वसनीयता थी। जो भी यहाँ आया, उसने केवल व्यवस्था नहीं देखी; उसने एक जीवंत तपोभूमि का अनुभव किया। यही अनुभव उसे पुनः-पुनः इस स्थान से जोड़ता चला गया। भारतीय परंपरा में कहा गया है—**'श्रद्धावान्**

लभते ज्ञानम्'। श्रद्धा वहीं जागती है, जहाँ साधना का प्रकाश हो।

शांतिकुंज की प्रतिष्ठा भी इसी साधना के कारण बनी। वंदनीया माताजी ने अपने जीवन से यह सिद्ध किया कि किसी भी आध्यात्मिक संस्था की वास्तविक पूँजी उसके भवन, संसाधन या प्रसिद्धि नहीं, बल्कि उसके साधकों का तप होता है। तप ही वह बीज है, जिससे कालांतर में विशाल वटवृक्ष विकसित होता है।

आज जब लाखों लोग शांतिकुंज को अपनी आध्यात्मिक जन्मभूमि मानते हैं, तब यह स्मरण रखना आवश्यक है कि इस विराट वटवृक्ष की जड़ें वंदनीया माताजी की तपश्चर्या में सिंचित हुई हैं। यदि युगऋषि ने इस युग के लिए विचारक्रांति का दर्शन दिया, तो वंदनीया माताजी ने अपनी साधना से उस दर्शन को जीवन प्रदान किया।

यदि पूज्य गुरुदेव ने बीज को बोया, तो माताजी ने उसे अपने तप के जल से सींचकर विश्वव्यापी वृक्ष बनाया। इसी दृष्टि से शांतिकुंज को केवल एक संस्थान कहना उसके वास्तविक स्वरूप के साथ न्याय नहीं होगा। यह वंदनीया माताजी की तपोभूमि है—ऐसी तपोभूमि, जहाँ अखंड दीप की ज्योति केवल एक दीपक की लौ नहीं, बल्कि ऋषिचेतना का अखंड प्रकाश है; जहाँ गायत्री महापुरश्चरणों की अनुगूँज आज भी वातावरण को पवित्र बना रही है; जहाँ सेवा का प्रत्येक कार्य साधना है और साधना का प्रत्येक क्षण लोक-मंगल हेतु समर्पित है।

वंदनीया माताजी का जीवन हमें यह विश्वास दिलाता है कि तप कभी निष्फल नहीं जाता। यदि साधना में निष्ठा, संकल्प में पवित्रता और उद्देश्य में लोकमंगल हो, तो एक छोटी-सी कुटिया भी युग-परिवर्तन का केंद्र बन सकती है। शांतिकुंज इसका साक्षात् प्रमाण है।

यह स्थान ईंट-पत्थरों से नहीं, बल्कि वंदनीया माताजी की तपशक्ति, मातृस्नेह और गायत्री-साधना से निर्मित हुआ है। इसलिए शांतिकुंज केवल एक भौगोलिक स्थान नहीं, बल्कि आधुनिक युग की ऋषि परंपरा का धड़कता हुआ हृदय है और उस हृदय की आत्मा हैं वंदनीया माताजी। ❑

सृजन-शिल्पियों के समुदाय को अग्रगामी बनाने में लगी हुई केंद्रीय शक्ति अपने और दूसरों के अनेकानेक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए विश्वास दिलाती है कि यह पारस से सटने का समय है, कल्पवृक्ष की छाया में बैठने का अवसर है।

प्रभात पर्व में जागरूकता का परिचय देकर हममें से हर किसी को प्रसन्नता, प्रफुल्लता और सफलता की उपलब्धियों का भरपूर लाभ मिल सकता है, साथ ही परिष्कृत-प्रतिभायुक्त व्यक्तित्व से जीने का भी।

मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी

'नवयुग का संविधान' भावी मानवता के स्वर्णिम भविष्य और स्वर्गीय जीवन से युक्त धराधाम के नवसृजन की मर्यादा है। इसके अनुशासनों की छाँह में पूज्य गुरुदेव के महान लक्ष्य—'मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण' जैसी अद्वितीय परंतु सुनिश्चित संकल्पना को साकार होना है।

इसकी संरचना अठारह सूत्रों में युग निर्माण सत्संकल्प के रूप में प्रस्तुत है। प्रत्येक सूत्र के साथ इस महान लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ने का, विश्वमानवता की यथार्थ प्रगति का एक महत्त्वपूर्ण सोपान संबंधित है।

विगत नौ सूत्रों तक की चर्चा में हमने देखा कि पूज्य गुरुदेव इनमें व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व आदि जितनी भी व्यापकता में मानवीयता का विस्तार है, वहाँ तक के लिए जीवन के सभी स्तरों पर आदर्शों, मूल्यों, मर्यादाओं, प्रेरणाओं के प्रति संकल्पित होने का आह्वान करते हैं।

सत्संकल्प के साथ की यात्रा जीवन में देवत्व व स्वयं के संवर्द्धन-रूपांतरण की है। अगले सूत्रों में धरती को स्वर्गीय वातावरण और मानवता को उज्ज्वल भविष्य प्रदान करने वाली रीति-नीति समाहित है।

सत्संकल्प के नौंवें सूत्र में स्वयं के लिए व्यक्ति की जीवन-दृष्टि और सफलता का मानदंड कैसा होना चाहिए, इस मर्म को समझाया गया है। अब इस दसवें सूत्र-सोपान में पूज्य गुरुदेव स्वयं के साथ-साथ अन्यों के प्रति, समूचे समाज के प्रति मूल्यांकन की, परखने की आदर्श जीवन-दृष्टि कैसी हो? इस बात का उपदेश करते हैं।

उनके पावन अमृतमयी शब्दों में प्रकट हुआ सत्संकल्प का यह दसवाँ सूत्र है—**'मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।'**

व्यक्ति की नजरें अथवा नजरिया यदि दोषपूर्ण हों तो वह किसी भी वस्तु या वस्तुस्थिति का ठीक-ठीक अंदाजा नहीं लगा सकता और इस आधार पर लिए गए निर्णय भी प्रायः गलत ही साबित होते हैं। ऐसे में दृष्टि और दृष्टिकोण—दोनों का सही होना आवश्यक है, तभी सत्यता की परख और निर्णयों की सार्थकता बन पड़ती है।

मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी दृष्टि, उसका विवेक है। सृष्टि में मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है, जिसके पास यह क्षमता है। विवेक को आधार बनाकर ही जीवन के सभी निर्णयों और क्रियाकलापों का निर्धारण हो, तभी मनुष्य की मनुष्यता सार्थक होती है। इसी दृष्टि से मनुष्य का मूल्यांकन भी मनुष्यता के गुणों से, मानवीय आचरण से, नैतिकता और मूल्यों से युक्त चिंतन-चरित्र के आधार पर होना चाहिए।

यही सीख-संदेश सत्संकल्प के इस सूत्र में है कि लोगों का मूल्यांकन, किसी की श्रेष्ठता-सफलता की परख, उसमें सन्निहित मानवीयता के गुणों से-सदाचरण से किया जाए। व्यक्ति एवं समाज में यह गलत धारणा एवं दृष्टि पनप चुकी है कि लोग सफलता, उन्नति और श्रेष्ठता के मानदंडों को

चारित्रिक विशेषताओं को नहीं, वरन पद-प्रतिष्ठा, धन, साधन-संसाधन, ऐश्वर्य आदि बाह्य अस्थिर चीजों को मान बैठे हैं।

मनुष्य में मनुष्यता का होना, यही उसके जीवन की सबसे बड़ी सफलता है और अन्यों के प्रति सेवा, सहयोग व संवेदना, यही सार्थकता-श्रेष्ठता का आधार। इसी दृष्टि को मूल्यांकन के मानदंड के रूप में अपनाया जाना आवश्यक है। वर्तमान में मनुष्य जीवन की उच्चता के लिए अपनाए जाने वाले मानदंड, कसौटी को मानवीय गरिमा के अनुरूप नहीं कहा जा सकता है।

यहाँ समाज में ऐसे लोगों को बड़ा एवं सफल समझा जाता है, जिन्होंने आचरण-चरित्र की दृष्टि से भले ही कोई विशेषता जीवन में उत्पन्न न की हो, परंतु पद, धन, वैभवयुक्त जीवन कर लिया हो या जिसने बाह्य जीवन को सजाने-सँवारने के लिए, सुविधासंपन्न बनाने के लिए ही विशेषयोग्यता-कुशलता अर्जित कर तथाकथित रूप में सफलता प्राप्त कर ली हो।

समाज में प्रचलित ऐसी धारणा, ऐसी दृष्टि, ऐसे मानदंड से प्रभावित हो नए लोग भी अपनी सफलता की कसौटी किसी नौकरी, पद, प्रतिष्ठा, धन, साधन की उपलब्धि को मानकर उसी दिशा में चल पड़ते हैं।

किसी के मन में यह कुतर्क जन्म ले सकता है कि व्यक्ति स्वयं के लिए अपनी क्षमता का उपयोग कर सफल होता, प्रतिष्ठित होता है, धन, पद, मान पाता है तो इसमें बुराई क्या है? ऐसे लोगों से यही कहना है कि इसमें बुराई मनुष्य की मनुष्यता को खो देने की है। चारित्रिक गुणों, जीवनमूल्यों को नजरंदाज कर देने की है।

इसी दृष्टिकोण का परिणाम है कि चारों ओर धन, पद, वैभव, क्षमता, योग्यता, उपलब्धि वाले लोग मिल जाते हैं, परंतु इनसानियत की, मनुष्यता की, आचरण की श्रेष्ठता और आदर्शों की कसौटी पर खरे उतरने वाले लोग खोजे नहीं मिलते।

स्वार्थ, अहं, लालच, लोभ, लाभ जैसी प्रवृत्तियाँ तो चारों ओर फलती-फूलती दिखाई दे जाएँगी, पर सहज, स्वाभाविक कहे जाने वाले मानवीय आचरण के गुण यथा प्रेम, दया, करुणा, त्याग, सेवा, समझ, सहयोग, सहानुभूति, सत्कार आदि सद्गुणी प्रवृत्तियाँ तिरोहित होते जा रहे हैं। मूल्यांकन की इस दोषदृष्टि का ही परिणाम है कि समाज में भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण, बेईमानी, लूट, अत्याचार जैसी असंख्य दुष्प्रवृत्तियाँ फैल गई हैं।

व्यक्ति शॉर्टकट तरीके से इन्हीं गलत रास्तों का उपयोग कर सफलता की श्रेणी में खड़ा होता जा रहा है और दुर्भाग्य से समाज में उसे मान-सम्मान और प्रतिष्ठा भी मिल जाती है। ऐसी प्रवृत्तियों एवं आचरण के प्रति मूक समर्थन भी एक तरह से उनका प्रोत्साहन ही है। यही कारण है कि मानवीय सदाचरण, सत्कर्मों, सत्प्रवृत्तियों के प्रति चिंतन, रुचि और प्रेरणाओं का व्यक्ति और समाज के जीवन में कोई स्थान नहीं दिखाई देता।

मनुष्य के मूल्यांकन की दृष्टि का दोषपूर्ण होना समूची मानवता और मानवीय गरिमा के लिए अभिशाप की तरह परिणाम उत्पन्न करने वाला प्रमुख कारण बन गया है। परमपूज्य गुरुदेव ने इस अभिशाप से मुक्त करके समाज को सही दिशा देने और मानवोचित आचरण करने की प्रेरणाओं के साथ ही इस सूत्र का प्रतिपादन भी किया है।

उनके अनुसार किसी भी व्यक्ति अथवा समाज की श्रेष्ठता की कसौटी में यह देखा जाना चाहिए कि उसके द्वारा उच्चतम मानवीय मूल्यों का, श्रेष्ठ आदर्शों और आचरण का निर्वाह कितना हो पाया है। व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन के प्रति व्यक्ति की सोच क्या है और उसके द्वारा सत्प्रवृत्तियों को

कितना प्रोत्साहित किया जा रहा है। केवल ऐसे लोगों एवं समाज को ही प्रोत्साहित, श्रेष्ठ और सफल मानकर सम्मान व आदर दिया जाना चाहिए।

यदि व्यक्ति के जीवन में मानवीय संवेदना और मनुष्य होने की गरिमा के अनुरूप चिंतन और कर्म हैं, तभी वह श्रेष्ठता की कसौटी पर खरा साबित हो सकता है।

वर्तमान में चलन यह है कि मनुष्य की उच्चता और निम्नता को मापने का आधार हमने बाह्यजगत् की उपलब्धियों को मान लिया है, जबकि ये जीवन में उपयोगिता के आधार पर निर्धारित किए गए साधन मात्र हैं। साधनों को आधार बनाकर मनुष्य-जीवन का मूल्यांकन करना उचित नहीं है।

मनुष्य की मनुष्यता साधनों, संसाधनों, प्रतिष्ठा में नहीं, अपितु उसके गुणों, व्यक्तित्व की ऊँचाई और आचरण की श्रेष्ठता में है। यह अवश्य देखा जाना चाहिए कि व्यक्ति ने अपने जीवन को सद्विचारों, सत्प्रवृत्तियों की दिशा में मोड़ा है या नहीं? इसी आधार पर उसका मूल्यांकन, प्रोत्साहन और सम्मान होना चाहिए।

मूल्यांकन की गलत परंपरा को अपना लेने से ही मनुष्य की सफलता, श्रेष्ठता का आधार उथली, संकीर्ण और निम्न चीजें हो गई हैं। इस बुराई ने मनुष्य जीवन की दिशा को भटकाने, भ्रमित और कुंठित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। मनुष्य जीवन को इस भटकाव से बाहर लाना आवश्यक है।

मौजूदा वस्तुस्थिति को युग की माँग के अनुरूप सही और औचित्यपूर्ण बनाया जाना आवश्यक है। इसके बदले बिना मनुष्य और मनुष्यता के आदर्शों, गुणों को पुनः जीवन में विकसित एवं प्रसारित किया जा सकना संभव नहीं। जीवन-दृष्टि के इसी परिवर्तन के लिए संकल्पित होना इस दसवें सत्संकल्प की मूल प्रेरणा है।

इस सूत्र का दूसरा आयाम यह भी है कि मौजूदा समय में दिखाई पड़ने वाले सफलता, योग्यता, संपदा, विभूतिसंपन्न लोगों की प्रशंसा, प्रोत्साहन और सम्मान भी सावधानीपूर्वक किया जाए। इसमें प्राथमिकता और सत्कार के लिए स्थान केवल चिंतन और कर्मों की श्रेष्ठता को ही मिले।

सामान्यतया यह देखा जाता है कि जीवन में योग्यता, क्षमता, उपलब्धियाँ तो लोग सुख-सुविधा, प्रतिष्ठा के लालच में प्राप्त कर लेते हैं या इस दिशा में प्रयासरत रहते हैं, परंतु मनुष्यता के गुणों, श्रेष्ठता की प्रवृत्तियों और लोक-कल्याण के कार्यों के प्रति प्रायः उदासीन ही बने रहते हैं।

यह सर्वथा मानवीय गरिमा के विपरीत स्वार्थ, संकीर्णता और संकुचित निम्न जीवन की रीति-नीति है। ऐसे लोगों को भला **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** और **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** जैसे आदर्शों वाली संस्कृति एवं समाज में प्रतिष्ठा, प्रोत्साहन, प्रशंसा क्यों मिलनी चाहिए? जब हमारे आदर्श उच्च हैं तो मूल्यांकन की कसौटी भी उन्हीं के अनुरूप होनी चाहिए।

कसौटी का मानदंड सही होने पर ही इन महान आदर्शों, मूल्यों का जीवन में संरक्षण, पोषण और विकास होना संभव है। वर्तमान में ऐसे उच्च आदर्शों को जीने, संरक्षित-पोषित करने की कड़ी टूटी हुई है।

इन पर चर्चा-विमर्श तो बहुतायत हो रहा है, परंतु आचरण और चरित्र के धरातल पर उतारने का प्रयास शायद ही कहीं दिखाई पड़े। सत्संकल्प का यह सूत्र आदर्शों और यथार्थता के बीच की इस टूटी कड़ी को पुनः प्रतिष्ठित करने का आह्वान करता है।

जरूरी है कि व्यक्ति स्वयं के आचरण एवं कर्मों को मानवीय गरिमा और आदर्शों के साँचे में ढाले तथा इसी कसौटी को आधार बनाकर अन्यों

का मूल्यांकन भी करे। आवश्यकता पड़ने पर आदर, सम्मान भी प्रदर्शित करे और जरूरी हो तो निंदा, तिरस्कार की रीति-नीति भी अपनाए। दुष्प्रवृत्तियों, दुराचरण की निंदा करने, ऐसों को तिरस्कृत करने में कोई बुराई नहीं है।

मनुष्य होने के नाते मनुष्यता की प्रवृत्तियों को ही पोषित, सम्मानित करना, प्रशंसनीय कहा जाना सार्थक है। मूल्यांकन की ऐसी स्वस्थ परंपरा को विकसित एवं समृद्ध बनाना प्रत्येक की जिम्मेदारी है। इसे युगधर्म के रूप में स्वीकार करते हुए इस दिशा में समाज को सजग बनाना समय की माँग है। समाज में किसी का सम्मान किया जाए या तिरस्कार, प्रशंसा की जाए या निंदा—दोनों ही स्थितियों में सतर्कता बरतनी आवश्यक है।

तिरस्कृत, अपराधी, दुश्चरित्र वाले के जीवन में यदि योग्यता, सफलता, उपलब्धियाँ दिखाई भी पड़ें तो उनका प्रोत्साहन, सम्मान कदापि न हो। विवेक का उपयोग किए बगैर ऐसों को आदर-सम्मान व महत्त्व दिए जाने के कारण ही दूसरे भी उस निकृष्टता के मार्ग पर निस्संकोच चल पड़ते हैं। इसके दुष्परिणाम भी सर्वविदित हैं।

मनुष्य जीवन में मनुष्यता के अवमूल्यन एवं चारित्रिक निकृष्टता का यही एक बड़ा कारण रहा है, जिसे परिवर्तित कर सही दिशा दी जानी है।

पूज्य गुरुदेव का यह सूत्र इसी दिशा का मार्ग प्रशस्त करता है। युग निर्माण की प्रक्रिया में नवसृजन की गतिविधियों का यह अनिवार्य अंग है। सद्विचार, सत्कर्म, सत्प्रवृत्तियों का पोषण हर स्तर पर हो सके, यही प्रयास और पुरुषार्थ किया जाना है।

नवसृजन की इस यात्रा में आदर्शों के प्रति निष्ठावान, सज्जनता से युक्त, अच्छी सोच वाले, सत्प्रवृत्तियों, लोकोपयोगी कार्यों में सहयोगी जनों का सत्कार, सम्मान और आदर करते हुए ही आगे जाना है।

यदि ऐसा होने लगे तो व्यक्ति एवं समाज की दृष्टि एवं दिशा सहज ही अच्छाई की ओर, मूल्यों-आदर्शों की ओर प्रेरित, परिवर्तित होने लगेगी और देखते-ही-देखते संपूर्ण समाज का वातावरण परिष्कृत हो मानवीय सद्गुणों का संरक्षक, पोषक, प्रकाशक बन उठेगा। ❑

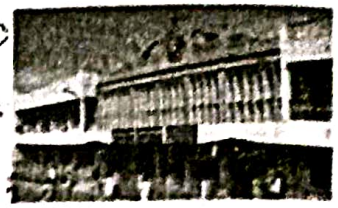
तीन चोरों ने चोरी की। इस बार उन्हें बहुत धन मिला। तय हुआ कि आपस में बराबर-बराबर बाँट लिया जाए। पहले सोचा कि भोजन करने के पश्चात बँटवारा करेंगे। दो, भोजन खरीदने गए। एक, धन की रखवाली के लिए वहीं रुक गया।

उस मध्य तीनों के मन में लालच आ गया। भोजन लेने गए चोरों ने भोजन में विष मिला दिया। उधर उनके लौटने पर, रखवाली कर रहे चोर ने उनकी तलवार मारकर हत्या कर दी। उन्हें मारने के बाद वह भोजन करने बैठा तो विष से मारा गया।

अनीति से प्राप्त धन किसी का न हो सका।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—212

प्राण चिकित्सा का अवसाद पर प्रभाव



आधुनिक समय में स्वास्थ्य संवर्द्धन, आरोग्य एवं चिकित्सा के क्षेत्र में आधुनिक प्रवृत्तियों के साथ-साथ पारंपरिक एवं पूरक कही जाने वाली प्रणालियों को भी महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है। प्रायोगिक एवं वैज्ञानिक आधारों पर इन विशिष्ट प्रणालियों की सार्थकता और महत्ता भी प्रमाणित हो रही है।

योग चिकित्सा, प्राणिक चिकित्सा, यज्ञ चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, पंचकर्म, एक्यूप्रेशर आदि ऐसी अनेक विधाएँ हैं, जिनको स्वास्थ्य संवर्द्धन के साथ-साथ चिकित्सा उपचार में भी सम्मिलित किया जाने लगा है। आधुनिक चिकित्सा की उपलब्धता एवं दुष्परिणामों, सीमाओं को ध्यान में रखते हुए इन वैकल्पिक एवं पारंपरिक चिकित्साओं की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक एवं समय की माँग भी है, परंतु इन प्रणालियों की वैज्ञानिक आधारों पर जाँच-परख और प्रभाव के तथ्यों को जानना भी आवश्यक है।

इस दिशा में शोध-अनुसंधान कराना एवं प्रामाणिक पहलुओं को सामने लाना तथा चिकित्सा उपायों के रूप में प्रस्तुत करना अत्यंत प्रासंगिक है। उल्लेखनीय है कि इस दिशा में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योग, आयुर्वेद, मनोविज्ञान जैसे विभागों में विशिष्ट शोधकार्यों को संपन्न कराने की सुदीर्घ परंपरा रही है। इसी क्रम में एक नवीन आयाम वर्ष—2022 में संपन्न किए गए शोध अध्ययन के रूप में सामने आया है। योग चिकित्सा एवं प्राणिक चिकित्सा की सम्मिलित तकनीकों को आधार बनाकर उपचार की नई विधि को खोजने वाला यह शोधकार्य अत्यंत विशिष्ट है।

शोधार्थी दुर्गेश द्विवेदी द्वारा संपन्न किया गया यह शोधकार्य विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पंड्या जी के विशेष संरक्षण तथा डॉ० अमृतलाल गुर्वेन्द्र के निर्देशन व डॉ० संतोष विश्वकर्मा के सहनिर्देशन में पूर्ण किया गया है। इस अध्ययन का विषय है—**'प्राण चिकित्सा, प्राणायाम तथा ध्यान का अवसाद पर पड़ने वाले सम्मिलित प्रभाव का अध्ययन।'** विश्वविद्यालय के योग एवं स्वास्थ्य विभाग के अंतर्गत संपन्न हुए इस अध्ययन को शोधार्थी द्वारा कुल पाँच अध्यायों में वर्गीकृत कर प्रस्तुत किया गया है।

प्रायोगिक एवं वैज्ञानिक शोध की प्रक्रियाओं का पालन करते हुए शोधार्थी द्वारा इस अध्ययन के प्रयोग हेतु यादृच्छिक प्रतिचयन विधि का उपयोग करते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शांतिकुंज व तनाव निवारण केंद्र, हरिद्वार से अवसाद समस्या से ग्रस्त कुल 120 लोगों को चयनित किया गया। इन सभी की आयु का मानक 20 वर्ष से लेकर 60 वर्ष तक रखा गया। चयनितों में से 60 लोगों को प्रयोगात्मक समूह एवं शेष को नियंत्रित समूह में वर्गीकृत किया गया।

शोधार्थी ने प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व शोध उपकरणों की सहायता से सभी चयनितों का स्वास्थ्य परीक्षण कराया। स्वास्थ्य परीक्षण में जिन उपकरणों को प्रयुक्त किया गया; वे हैं—(i) बायोपल्सर रिफ्लेक्सोग्राफ मशीन, जिसे मारटिना ग्यूबर (2000)

द्वारा विकसित किया गया है तथा (ii) प्रो० ओ० पी० मिश्र, डॉ० संतोष कुमार व डॉ0 विद्याभूषण वर्मा द्वारा विकसित 'डिप्रेशन टेस्ट एज 18+ है।'

स्वास्थ्य परीक्षण के उपरांत 90 दिनों की अवधि तक शोधार्थी द्वारा प्रयोगात्मक समूह के लोगों पर अपनी चयनित शोध-प्रक्रियाओं का प्रयोग किया गया। इस प्रक्रिया में प्राण चिकित्सा के साथ-साथ अनुलोम-विलोम प्राणायाम तथा सोऽहम् ध्यान का 10 मिनट नियमित अभ्यास कराया गया।

प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पुनः पूर्व की भाँति सभी चयनितों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। दोनों परीक्षणों से प्राप्त तथ्यों, आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के रूप में यह पाया गया कि शोध में चयनित अभ्यास प्रक्रियाओं और उनकी सम्मिलित तकनीकों का रोगियों के अवसाद स्तर पर सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

उल्लेखनीय है कि इस शोध अध्ययन के परिणामों में जो सार्थकता की प्राप्ति हुई है, उसके पीछे का मुख्य कारण शोधार्थी द्वारा प्रयोग हेतु चयनित विशिष्ट चिकित्सा तकनीकें हैं। इन सभी तकनीकों का स्वतंत्र रूप से भी महत्त्व और प्रभाव बताया गया है।

इस शोध में सकारात्मक परिणाम उत्पन्न करने में इनकी भूमिका एवं प्रभाव की प्रामाणिकता इनके सामायिक महत्त्व को दरसाने वाली है। इन प्रयुक्त तकनीकों में प्रथम है—प्राण चिकित्सा। इसे प्राणिक हीलिंग भी कहा जाता है।

प्राण जीवन शक्ति के रूप में सभी में विद्यमान है। जीवन की आभा एवं ओजस्विता के रूप में इसकी पहचान की जाती है। जीवन के अस्तित्व एवं क्रियाकलापों में प्राणशक्ति का असंतुलन या न्यूनता अनेक समस्याओं को जन्म देती है; जबकि इसके संतुलन और समृद्धि से आयु, आरोग्य और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। प्राण चिकित्सा में रोग-समस्याओं के कारणों में इसी प्राणशक्ति की कमी और ऊर्जा केंद्रों को चिह्नित कर उपचार करने का प्रयास किया जाता है।

प्राण ऊर्जा के तीन स्रोत कहे गए हैं—पृथ्वी, सूर्य और वायु। प्राण चिकित्सा के सिद्धांतों के अनुसार सूर्य के प्रकाश से प्राप्त प्राणशक्ति पूरे शरीर को शक्ति और स्वास्थ्य प्रदान करती है। वायु से प्राप्त प्राणशक्ति समस्त ऊर्जा केंद्रों को, चक्रों को संवर्द्धित करती है तथा भू-प्राणशक्ति से चिंतन एवं शरीर की कार्यक्षमता विकसित बनी रहती है।

जल तत्त्व में उक्त तीनों स्तर की प्राणशक्ति को ग्रहण करने की क्षमता है, इसलिए इस चिकित्सा उपचार में जल चिकित्सा का भी प्रयोग किया जाता है। आधुनिक समय में प्राण चिकित्सा को उपयोगी विधि के रूप में सामने लाने वाले मास्टर चोआ कोक सुई के अनुसार प्राणशक्ति-उपचार एक प्राचीन विज्ञान और उपचार-प्रक्रिया है।

इसमें शरीर और मन के रोगों के उपचार में चिकित्सक द्वारा शरीर के जीवद्रव्य और प्राणशक्ति को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया जाता है। शोधार्थी द्वारा इस शोध में प्राण चिकित्सा की प्रक्रिया, तकनीकों, सावधानियों और संपूर्ण व्यक्तित्व आयामों पर पड़ने वाले प्रभावों की विस्तृत व्याख्या-विवेचना प्रस्तुत की गई है।

प्राण चिकित्सा की तकनीक के साथ-साथ इस शोध प्रयोग में यौगिक चिकित्सा की भी दो विशिष्ट तकनीकों को प्रयोग में सम्मिलित किया गया है। इन यौगिक विधियों में प्रथम है—अनुलोम-विलोम प्राणायाम। इस प्राणायाम को नाड़ीशोधन अथवा नाड़ी शुद्धि प्राणायाम भी कहा जाता है।

प्राणायाम के शरीर एवं मन पर वैज्ञानिक प्रभाव को दरसाने वाले अनेकों शोध हुए हैं। स्वास्थ्य लाभ एवं चिकित्सा-उपचार में इसकी महत्ता सर्व स्वीकार्य है। किसी योग्य एवं कुशल प्रशिक्षक के द्वारा सीखकर कोई भी इसे सहजतापूर्वक अपनाकर लाभान्वित हो सकता है। प्राणायाम की अनेकों विधियाँ हैं, जिन्हें उपचार-प्रक्रिया के अनुरूप चयनित कर प्रयुक्त करना होता है।

इस अध्ययन में अवसाद के निदानात्मक उपचार में नाड़ी शोधन प्राणायाम को सम्मिलित किया गया है। यह विशिष्ट प्राणायाम का अभ्यास जीवन के सभी शक्ति ऊर्जा के चक्रों, प्राण केंद्रों को जाग्रत एवं विकसित बनाने में सहयोग करता है।

प्राणवायु की शुद्धता से शरीर भी आरोग्य प्राप्त करता है और अंत:स्रावी ग्रंथियों के सकारात्मक रूप से प्रभावित होने से मन भी शांत एवं तनावरहित निरोगी बनता है। इसके अतिरिक्त सोऽहम् ध्यान-साधना के रूप में एक और योग चिकित्सा की विशिष्ट तकनीक इस प्रयोग में सम्मिलित की गई है। यह मनोभावनात्मक स्थिति के संतुलन एवं विकास की एक उच्चस्तरीय आध्यात्मिक तकनीक है।

सोऽहम् ध्यान-साधना को अजपा जप अथवा प्राण गायत्री भी कहा जाता है। इसमें जप स्वत: होता है तथा प्रत्येक जप के साथ श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया से प्राण-संवर्द्धन भी। इसलिए अजपा और प्राण गायत्री कहा गया है।

'सो' का तात्पर्य है वह परमात्मा और 'अहम्' अर्थात मैं। वह परमात्मा और मैं एक ही हैं—इस अद्वैत भावना का ध्यान इस तकनीक में किया जाता है। इसका अभ्यास आध्यात्मिक लाभ तो देता ही है, साथ ही मन को एकाग्रता और गहन विश्रांति की अनुभूति भी कराता है।

यह स्नायुतंत्र को प्रभावित कर मस्तिष्क की अल्फा तरंगों को उत्पन्न कर मानसिक अवस्था को उच्चता प्रदान करने में सहायक होता है। इस प्रकार इस अध्ययन में अवसाद जैसी गंभीर मानसिक समस्या के सुरक्षित एवं सरल उपचार की प्रक्रिया के रूप में एक सार्थक विकल्प प्रस्तुत किया गया है। यह विकल्प उक्त तीनों विशिष्ट उपचार तकनीकों के रूप में प्रस्तुत है, जिन्हें अपनाकर कोई भी अपनी मानसिक अवस्था में संतुलन एवं आरोग्य की प्राप्ति कर सकता है। ❑

ध्वंसः सरल एवं च लघुः अग्निकणोऽपि सः।
ग्लपितं कोलकं चापि कर्तु तत्प्रभवेदलम्॥
सृजनात्मकार्यषु गौरवं परिकीर्तितम्।
चिंतनं मानवस्वार्थ प्रयासः रार्जकेसु हि॥

अर्थात ध्वंस सरल है। उसे छोटी चिनगारी एवं सड़ी कील भी कर सकती है। गौरव सृजनात्मक कार्यों में है। मनुष्य का चिंतन और प्रयास सृजनात्मक कार्यों में ही रत रहना चाहिए।

फलाकांक्षा को प्रेरित करती है राजसी धृति



(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की चौंतीसवीं किस्त)

[इससे पूर्व की किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के तैंतीसवें श्लोक की व्याख्या प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि जो धृति योग से विकसित होती है और जो मन, प्राण और इंद्रियों को स्थिर रखती है, उसे सात्त्विक धृति का संकल्प कहते हैं। बुद्धि के त्रिगुणात्मक भेदों को समझाने के उपरांत श्रीभगवान अर्जुन को धृति के भेदों को समझाते हैं। वे अर्जुन को बताते हैं कि सात्त्विक धृति हमारे अंतर्मन की वह शक्ति है, जिससे हम प्रतिकूल परिस्थितियों एवं बाधाओं के मध्य भी अपने पथ पर अडिग, अविचलित रहते हैं। वे अर्जुन से इस श्लोक में कहते हैं कि सात्त्विक धृति वह है, जो परमात्मा के प्रति एकनिष्ठ है। धृति का अर्थ मनोनिग्रह से, धैर्य से एवं धारण करने की क्षमता से है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि ऐसी धृति को परमात्मा से जोड़ देने के उपरांत अन्य किसी से संबंध बनाने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है; क्योंकि सात्त्विक धृति परमात्मा के प्रति स्थिर होती है।

इसी के साथ श्रीभगवान कहते हैं कि सात्त्विक धृति का समता तथा योग से युक्त होना भी अनिवार्य होता है। आदिशंकराचार्य ने धृति को दैवी संपदा बताते हुए कहा है कि जब देह, इंद्रियाँ थक जाती हैं तो उनमें उत्साह पैदा करने वाली वृत्ति को धृति कहते हैं। इसी आधार पर भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिस धृति से मन, प्राण और समस्त इंद्रियों की क्रियाएँ धारण की जाती हैं—वह सात्त्विक धृति है। सार रूप में कहें तो सात्त्विक धृति एक ऐसे संकल्प का नाम है, जो हमारे मन, प्राण, इंद्रियों को धारण करता है। साथ ही यह सात्त्विक धृति फल की आशा को त्यागकर, योग से युक्त होकर परमात्मा के प्रति स्थिर रहती है और मोक्षप्राप्ति में सहायक होती है।]

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि—

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी॥34॥

शब्दविग्रह—यया, तु, धर्मकामार्थान्, धृत्या, धारयते, अर्जुन, प्रसङ्गेन, फलाकाङ्क्षी, धृतिः, सा पार्थ, राजसी।

शब्दार्थ—परंतु (**तु**), हे पृथापुत्र! (**पार्थ**), अर्जुन! (**अर्जुन**), फल की इच्छा वाला मनुष्य (**फलाकाङ्क्षी**), जिस (**यया**), धारण शक्ति के द्वारा (**धृत्या**), अत्यंत आसक्ति से (**प्रसङ्गेन**), धर्म, अर्थ और कामों को (**धर्मकामार्थान्**), धारण करता है (**धारयते**), वह (**सा**), धारण शक्ति (**धृतिः**), राजसी है (**राजसी**)।

अर्थात हे अर्जुन! जिस धृति से धर्म, काम, अर्थ का धारण किया जाता है, लेकिन धर्म, काम, अर्थ की प्राप्ति के अवसरों पर जो मनुष्य को फलाकांक्षी बना देती है—हे अर्जुन! वह राजसी धृति है। पिछले श्लोक में सात्त्विक धृति के विषय

में बताने के बाद अब श्रीभगवान अर्जुन को राजसी धृति के विषय में बताते हैं।

वे अर्जुन से कहते हैं कि जिस धृति से धर्म, काम, अर्थ का धारण यानी आचरण किया जाता है—वह राजसी धृति है। भारतीय संस्कृति में चार तरह के पुरुषार्थों का वर्णन है—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। इनमें से मोक्षप्राप्ति का पथ दिखाने वाली धृति सात्त्विक धृति है। उसका उल्लेख भगवान श्रीकृष्ण ने इससे पूर्व के श्लोक में किया है। धर्म, काम एवं अर्थ का आचरण कराने वाली धृति राजसी धृति है—ये शेष तीनों पुरुषार्थ हैं।

सात्त्विक धृति मोक्ष प्रदान कराती है, राजसी धृति धर्म के पथ पर आरूढ़ करती है और तामसिक धृति अधर्माचरण कराती है। धर्माचरण का अर्थ है कि अर्थोत्पादन या अर्थ-प्राप्ति भी धर्मसम्मत होनी चाहिए। कामनाओं की पूर्ति भी धर्माचरण के आधार पर होनी चाहिए। राजसी धृति ये तो करती है, परंतु ऐसे अवसरों पर मनुष्य को फलासक्ति में डुबो देती है। व्यक्ति इस पथ का पालन अवश्य करता है, परंतु फल-प्राप्ति की आकांक्षा से करता है, निष्कामता से नहीं।

धर्माचरण से धनोपार्जन किया जाए तो दोनों में वृद्धि होती है, परंतु यदि उससे केवल कामनाओं की पूर्ति की जाए तो वह दोनों को ही नष्ट कर देती है।

शास्त्रों में कथा आती है कि—एक राजा बहुत धर्मनिष्ठ हुआ करता था। उसका पुण्याचरण आसुरी शक्तियों को रुचिकर न लगा। उसका पुण्य बहुत होने के कारण उसका राज्य नष्ट कर पाना संभव न था तो उन्होंने उस राज्य के निवासियों के मनों को भ्रष्ट करने की सोची।

उन्होंने हर व्यक्ति के मन में राजसी गुण का प्रादुर्भाव कर दिया। वे सभी लोग जो निष्काम भाव से कार्य करते थे, उनके मन में फलाकांक्षा आ जाने से उनका कर्म करने का उद्देश्य बदल जाता है। परिणामस्वरूप राज्य की पवित्रता-मर्यादा नष्ट होने लगी। यह देख राजा को चिंता हुई। उसने अपने गुरु से मंत्रणा की।

कुलगुरु से प्राप्त निर्देशानुसार राज्य में सात्त्विक वृत्ति के अभिवर्द्धन हेतु यज्ञ, दान, स्वाध्याय, सत्संग की व्यवस्था बनाई गई। उससे वातावरण पुनः परिवर्तित होना आरंभ हुआ और परिणाम में उत्पन्न सात्त्विक धृति ने राज्य की पुनः रक्षा कर ली। यहाँ भगवान कृष्ण अर्जुन को ये ही समझाते हैं कि फलाकांक्षा की दृष्टि से किया गया आचरण, धर्म को पोषित करने वाला होते हुए भी राजसी धृति का आधार होता है। (क्रमशः)

हवा सतत बहती रहती है, पर जब उसे पवनचक्की के माध्यम से सुनियोजित कर लेते हैं तो कई प्रयोजन सधते हैं। समुद्र से ढेरों भाप निकलती है, वातावरण में फैल जाती है, पर इसी प्रकार की भाप को रोककर यंत्रों को चला लिया जाता है तो इस चमत्कार से आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहा जाता। मनुष्य को प्राप्त शक्तियाँ यदि निरोध के बाद सुनियोजित कर दी जाएँ तो इसी काया से अगणित चमत्कारी परिणाम उपलब्ध होते हैं।

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

प्रेरणादायी गुरुसत्ता का जीवन

(उत्तरार्द्ध)



परमवंदनीया माताजी के उद्बोधन सदा से गायत्री परिजनों के लिए प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। वंदनीया माताजी कभी मातृत्व के भावों को हृदय में समेटे हुए गायत्री परिजनों को आश्वासन देती हुई प्रतीत होती हैं तो कभी एक गहन अध्यात्मवेत्ता के रूप में मानवीय चेतना के गुह्य आयामों को जनसामान्य के सम्मुख अनावृत करती हुई दिखाई पड़ती हैं। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्बोधन में परमवंदनीया माताजी प्रत्येक गायत्री परिजन को उसके जीवन की दिशा स्पष्ट करने के लिए प्रेरित करती हैं एवं कहती हैं कि हर गायत्री परिजन को अपनी साधना हेतु प्रेरणा प्राप्त करने के लिए दूर भटकने की आवश्यकता नहीं, वरन पूज्य गुरुसत्ता के प्रति अपने हृदय के तारों को जोड़ने मात्र की आवश्यकता है। वे पूज्य गुरुदेव और स्वयं का उदाहरण देते हुए कहती हैं कि वे दोनों, दो भिन्न व्यक्तित्व नहीं, वरन एक ही हैं। जो उनसे जुड़ना चाहे, उसे उस हेतु मात्र अपनी पात्रता विकसित करने की आवश्यकता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

गुरुदेव-माताजी एक हैं

बेटे, हम और आचार्य जी दूध और पानी की तरह से मिले हुए हैं। कहते हैं कि उसमें भी खटाई पड़ जाती है और नीबू पड़ जाता है तो वो फट जाता है, लेकिन हम आस्थाओं की दृष्टि से एक हैं, सिद्धांत की दृष्टि से एक हैं, भावनाओं की दृष्टि से एक हैं और क्रियाकलाप की दृष्टि से एक हैं।

योग्यता की दृष्टि से जरूर कम हैं और तप की दृष्टि से भी उन्होंने ज्यादा किया है। मैंने न के बराबर किया है, उस दृष्टि से तो कम हैं, लेकिन आप पाएँगे कि हम दोनों मित्र-मित्र के तरीके से, भाई-भाई के तरीके से हैं, पति-पत्नी के तरीके से और मैं तो आप से ये कहूँगी एक शब्द में तो अतिशयोक्ति न होगी कि माँ और पुत्र के तरीके से हैं और हमेशा इसी गति में रहेंगे और ऐसे ही आगे बढ़ते जाएँगे। हमें कोई भी आपत्ति नहीं है। हम तो अपने परिजनों से यह कहते हैं कि आइए निमंत्रण है और आप सीखिए अपनी जीती जागती मूर्ति से, उससे सीखिए, जो बोलता भी है और कहता भी है।

बेटे, हम भगवान की मूर्ति के सामने, निर्जीव मूर्ति के सामने मत्था टेकते हैं और वह हमें आशीर्वाद देता भी है कि नहीं देता, हमें नहीं मालूम है। वो समर्थ है भी कि नहीं, लेकिन मैं कहूँगी कि बेटे ये जो भगवान के रूप में जीती-जागती प्रतिमा है, आप कहेंगे कि माताजी अपने पति का विज्ञापन कर रही हैं और कह रही हैं कि मेरा पति भगवान है। बेटे! मैं अंतरात्मा से कह रही हूँ कि वे मनुष्य नहीं हैं, देवता हैं, भगवान हैं। जो मैंने समझा है, जो पढ़ा है, वही आपसे कहती हूँ, मैं मिथ्या नहीं कहती।

मैं भावनाशील हूँ और भावनाशील होते हुए मैंने भावनाओं से पढ़ा है और भावनाओं से

मैंने उनको जीत लिया है। कहते हैं कि नारी पुरुष को जीतने में असमर्थ है और मैं दावे से कहती हूँ कि नारी जीतने में बिलकुल समर्थ है। यदि समर्पण कर दिया तो फिर पीछे मुड़कर के देखना क्या है? हाँ! मैंने बिलकुल जीत लिया। बच्चे कहते हैं कि माताजी की बात को गुरुजी मान लेते हैं।

हमें आज कोई डाँट पड़ गई है तो माताजी सँभाल लेंगी। क्या बात है, माताजी क्या सँभालेंगी? और तुम्हें डाँट क्यों पड़ गई? भाई क्या बात है? हाँ बेटे, बात है, एकदूसरे को समझ लिया है। इतना गहन अध्ययन कर लिया है कि हमारे जीवन में कभी न कोई कटुता आई, न अलगाव आया। इतने योगी होते हुए भी जो विरक्त हैं, गृहस्थ से विरक्त हैं, मोह नहीं है। फर्ज और कर्त्तव्य और सेवा तो उनमें कूट-कूट करके भरी हुई है।

सेवा की प्रतिमूर्ति गुरुदेव

जब वो उसकी सेवा कर सकते हैं, जिसको कि कोढ़ हो गया था। उस हरिजन को कीड़े पड़ गए थे। सारे गाँववालों ने विरोध किया और कहा कि आचार्य जी एक हरिजन के यहाँ जाते हैं और उसको दवा-दारू देते हैं, उसकी मदद करते हैं, उसकी सेवा करते हैं और उसकी पीड़ा में राहत पहुँचाते हैं।

सबने विरोध किया; क्योंकि हम ब्राह्मण थे और वो हरिजन थी, इसलिए विरोध किया गया, लेकिन सेवा को सबसे पहला महत्त्व दिया। चाहे वह हरिजन हो गाँव की अथवा कोई क्यों न हो, सेवा के लिए उन्होंने उनमें कोई फरक नहीं किया। कहते हैं कि स्त्री की सेवा कहीं की जाती है? मल-मूत्र उठाए जाते हैं? लोग कतराते हैं।

सेवा कराना तो सबने सीखा है, लेकिन सेवा करना नहीं सीखा है, परंतु उनमें कूट-कूट करके सेवा भरी हुई है। मैं कैसे कहूँ, मैं कितना गुणगान करूँ? जितना मैं करूँ, उतना ही कम है। सेवा के मामले में भी वो सबसे आगे हैं और कर्त्तव्य के मामले में भी सबसे आगे हैं। उन्होंने हमें हर कदम पर आगे बढ़ाया हर जगह जहाँ भी कहीं हिम्मत हारी होगी। कभी जी उदास हुआ होगा तो फिर उन्होंने मेरे मन को सँभाला होगा और वो बात कही होगी, जिससे तब मेरे ओंठों पर हँसी आ जाए, पर बस आ जाए और मेरा जी हलका किया

जीवन और कार्य एकदूसरे के पूरक हैं। कार्य के स्तर को देखकर ही जीवन की सफलता आँकी जाती है। मात्र श्रम पर्याप्त नहीं, वह तो धूर्त और चोर भी करते हैं। उच्च उद्देश्यों से जुड़े हुए कर्त्तव्यपालन का ही दूसरा नाम कर्मयोग है, जिससे मानव विश्वंभर कहलाता है।

होगा और कहा कि देखो परिस्थितियाँ तो मनुष्य पर आती रहती हैं, परिस्थितियों में डगमगाने का क्या काम? और मैंने बस, वो शब्द कहे नहीं कि बस, स्फूर्ति आ गई। सारे शरीर में स्फूर्ति आ गई। कर्त्तव्य का पालन किया।

8 जनवरी की घटना सबको मालूम है ये भी मालूम है कि माताजी भावुक कितनी हैं और किसी का वो कष्ट नहीं देख सकतीं। आपको कल ही

की यह घटना बतानी है। छोटी-सी। टीवी पर एक कोई ऐसा आ रहा था, जिसके दोनों हाथ नहीं थे। दोनों हाथ नहीं थे तो भोजन कर रहा था। बस, उसको देख करके मैं जोर से रो पड़ी और मुझे बच्चों ने सँभाला और उन्होंने भी ऐसे शब्द कहे, जिससे थोड़ी देर बाद मुझे हँसी आ गई तो मैं कैसे जिंदा रह सकती थी?

उन घड़ियों में जो-जो बहेलिये ने मेरे कृष्ण के ऊपर आक्रमण किया, उस स्थिति को मैं कैसे देख सकती थी? लेकिन मेरे संकल्प ने, मेरे मनोबल ने और उनकी हिम्मत ने मुझे हिम्मत दिलाई। हिम्मत ही सब कुछ है, जीवन में हिम्मत होगी तो बड़े-बड़े मोर्चे पार कर जाएँगे।

मैं तो कहती हूँ आइए आपको निमंत्रण है, आप हमारी जिंदगी-से सीखिए। आइए आपको दावत है, हम आपको दावत देते हैं, काहे की देते हैं? सद्गुणों की देते हैं, सत्प्रेरणा की देते हैं और जिंदगी में जो जितनी सेवा है, उन्होंने की है। शरीर से और मन से प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष व्यक्ति नहीं जानता। प्रत्यक्ष जो लाभ होता है, वो लाभ दिखाई पड़ता है और परोक्ष में, परोक्ष में कितनी सेवाएँ की हैं लोगों की, वो नहीं समझते जो कि डूबते हुए को किनारे पर लाए हैं, दुःखी और पीड़ितों की सेवा की है, आँसू लेकर के आए हैं और यहाँ से जो व्यक्ति गया है वह हँसता हुआ गया है और सद्विचार फैलाने के लिए जो साहित्य में उन्होंने प्राण फूँके हैं।

पूज्य गुरुदेव का मूल्यांकन

आज तो मूल्यांकन नहीं होगा; क्योंकि सामने हैं, पर कभी कोई जमाना आएगा तब सही अर्थों में उनका मूल्यांकन होगा। "घर का जोगी जोगना, आन-गाँव का सिद्ध" ये कहावत लागू होती है। जब व्यक्ति होता है तो उसका मूल्यांकन नहीं होता और जब नहीं होता है, तब उसका मूल्यांकन होता है तो आज नहीं तो फिर, उनका मूल्यांकन होगा। हाँ जरूर होगा, अभी भी है और न रहने पर तो 100 गुना होगा, 1000 गुना होगा। तो आज मैंने घटनाएँ तो नहीं सुनाई हैं, लेकिन आपको यह सुनाया है कि अपने लिए कम, औरों के लिए ज्यादा। घर खरच के लिए न केवल 200 रुपये में उदरपूर्ति की है, लेकिन जो शेष बचा है, वो सारे समाज को लगाया है। पड़ोसियों को लगाया। रिश्तेदारों को लगाया है।

क्या हम घाटे में रहे? अरे बेटे घाटे में रहोगे तुम, हम नहीं रहेंगे। हमें तो इतनी शांति मिली। इतना बल मिला। दूसरों को खिलाने में जो आनंद है, वह खुद खाने में नहीं है। खुद खाने को धिक्कार है। खुद खाके हमारा क्या बनेगा? जो सूखी रोटी खाते हैं, मजदूरी करते है और हट्टे-कट्टे रहते हैं और जो मोहनभोग खाने वाले हैं, मेवा-मिठाई खाने वाले ये बलवान होते हैं क्या? नहीं ये गिर जाते हैं। हमने 200 रुपये में अपना घर-खरच किया और सारा-का-सारा हम दूसरों को ही देते रहे! दूसरों को ही देते रहे!!

आप जानते हैं इस काम का लाभ मिला कि हानि। अरे बेटे! वहाँ तो बैठे थे हम 15 रुपये महीने के मकान में और यहाँ आप देख लो लाखों रुपये के मकान में बैठे हैं, लाखों रुपये के, तो यह आपका है? अरे बेटे अपना तो शरीर भी नहीं होता। जीवात्मा होती है, तभी तक शरीर होता है। जीवात्मा छूट जाती है तो शरीर भी हमारा साथ नहीं देता। ये तो हमारा कुछ भी नहीं है और समझो तो सारा विश्व हमारा अपना है। सारा कुटुंब, कौन-सा कुटुंब, जो सारा राष्ट्र हमारा कुटुंब है, सारा समाज हमारा कुटुंब है और सारा विश्व हमारा कुटुंब है।

गायत्री परिवार हमारा कुटुंब है, नन्हे-मुन्हे हमारे बच्चे हैं। मैं उनमें झाँकी देखती रहती हूँ, चाहे

वो कोई 80 साल का बुड्ढा है और चाहे कोई 15 साल का है, चाहे वो 5 साल का है, जब मुझसे माँ कहकर आता है तो मुझे ऐसा लगता है की मेरा सतीश बैठा है। हम अपने सतीश से बात कर रहे हैं, यह मेरा बच्चा है। मेरा बच्चा है, उनके मन में झाँककर देख लें, ये क्या है? ये जिंदगी भर प्यार, प्यार लुटाया है और दूसरों का प्यार पाया है, असंख्य गुना पाया है और धन खरच किया है तो धन हमारे पास अनायास आया है।

धन किसके लिए? हमारे लिए? नहीं, व्यक्तिगत जीवन में क्या करना है? एक मुट्ठी खाना है और यहाँ से कपड़े पहने हैं वो हमारी भुजाएँ हैं। हमारे साथ एक समर्थ सत्ता ऐसी बैठी हुई है, जो हमारा एक का पेट पालन तो क्या वो हजारों का पेट पालन कर दे। लेकिन हमने लिया है समाज के लिए लिया है, 10-10 पैसे ले करके इस संस्था को बनाया है, गायत्री तपोभूमि को बनाया है और सारे विश्व में, कितनी? 2400 शक्तिपीठ हैं। उनका निर्माण किया है, यह कैसे किया है? दिया है तो लिया है, दो हाथ से दिया है और लाखों हाथ से लिया है। ये अध्यात्म, सही अध्यात्म है, एक दाना बोते हैं और 1000 दाने के रूप में उत्पन्न होता है। सैकड़ों दाने एक मक्का का बीज होता है और पूरे भुट्टे पर सैकड़ों दाने होते हैं। पाया है जिंदगी में। पाया है वही दिग्दर्शन कराने के लिए आज मैंने यह बात कही है।

आशा है कि हमारे परिजनों को यह पसंद आया होगा और उनको उत्सुकता होनी चाहिए। उनकी भावना होनी चाहिए तो वो सीखें गुरुजी से आ करके सीखें। उस मूर्ति से शिक्षण लें, उस भगवान से प्रेरणा लें जो सद्विचारों के रूप में फैलाते हैं, उन विचारों को ग्रहण करें तो मैं समझूँगी वो भी धन्य होंगे, परिवारवाले भी धन्य होंगे और हमारा सारा विश्व और परिवार जिसको हम युग निर्माण परिवार कहते हैं, जिसको हम अखण्ड ज्योति परिवार कहते हैं, जिसको हम प्रज्ञा परिजन कहते हैं, वह धन्य होंगे और सारे धन्य होंगे। इन शब्दों के साथ आज की बात मैं समाप्त करती हूँ।

॥ ॐ शांति ॥

बुझते दीपक को देख, उस पर व्यंग्य कसते हुए अंधकार बोला—"तुम दूसरों के लिए तिल-तिल जलते हो और बदले में इस दरदनाक अंत के सिवा तुम्हें क्या मिलता है।"

दीपक बोला—"बंधु! इस संसार में जो जन्मता है, वो मरता भी है। मैं अपना जीवन सार्थक सिद्ध करके जा रहा हूँ, इससे बड़ा सौभाग्य और भला क्या हो सकता है?"

अंधकार से प्रत्युत्तर में कुछ बोला न गया।

नूतन संभावनाओं को साकार करता विश्वविद्यालय



देव संस्कृति विश्वविद्यालय केवल एक उच्च शिक्षण संस्थान नहीं, बल्कि शिक्षा, संस्कृति, अध्यात्म और राष्ट्र-निर्माण के समन्वय की उस परिकल्पना का साकार रूप है, जिसे परमपूज्य गुरुदेव ने भावी भारत के निर्माण के लिए देखा था। उनकी दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान और रोजगार तक सीमित नहीं, बल्कि ऐसे व्यक्तित्वों का निर्माण करना था, जिनमें राष्ट्र के प्रति निष्ठा, समाज के प्रति संवेदना, संस्कृति के प्रति गौरव और मानवता के प्रति उत्तरदायित्व का भाव हो।

इसी व्यापक दृष्टि को विश्वविद्यालय अपने शैक्षिक एवं संस्कारपरक वातावरण के माध्यम से निरंतर आगे बढ़ा रहा है। स्वतंत्रता दिवस जैसे राष्ट्रीय पर्व इस दृष्टि को अभिव्यक्त करने के विशेष अवसर बनते हैं। इसी भावभूमि में विश्वविद्यालय में राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति एवं राष्ट्रीय एकता की भावना से ओत-प्रोत वातावरण में स्वतंत्रता दिवस के पावन अवसर पर 'हर घर तिरंगा' रैली का आयोजन किया गया।

रैली में विश्वविद्यालय परिवार के सदस्यों ने उत्साहपूर्वक सहभागिता करते हुए राष्ट्रध्वज के प्रति सम्मान एवं गौरव की भावना को अभिव्यक्त किया। रैली के माध्यम से विश्वविद्यालय परिवार ने राष्ट्रध्वज के प्रति सम्मान, राष्ट्रीय एकता और अखंड राष्ट्रभाव को सुदृढ़ करने का संदेश दिया।

रैली का शुभारंभ देव संस्कृति विश्वविद्यालय की कुलसंरक्षिका परमश्रद्धेया शैल जीजी, माननीय उपाध्यक्ष एवं आदरणीया शेफाली जीजी ने हरी झंडी दिखाकर किया। इस अवसर पर सभी ने राष्ट्रध्वज के सम्मान तथा राष्ट्र की एकता एवं अखंडता के प्रति अपने संकल्प को दोहराया।

रैली में विश्वविद्यालय के अधिकारीगण, शिक्षकगण, शिक्षणेत्तर कर्मचारी एवं छात्र-छात्राएँ बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए। हाथों में तिरंगा लेकर विद्यार्थियों एवं विश्वविद्यालय परिवार के सदस्यों ने देशभक्ति के नारों और राष्ट्रप्रेम की भावना के साथ सहभागिता की। यह दृश्य इस बात का सजीव प्रमाण बना कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय में शिक्षा के साथ राष्ट्रभाव और संस्कार भी जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं।

'हर घर तिरंगा' रैली का उद्देश्य प्रत्येक नागरिक के हृदय में राष्ट्रध्वज के प्रति सम्मान एवं गौरव की भावना को सुदृढ़ करना तथा राष्ट्रीय एकता, अखंडता और देशभक्ति के संदेश को जन-जन तक पहुँचाना रहा। इस प्रकार स्वतंत्रता दिवस का यह आयोजन केवल एक उत्सव न रहकर परमपूज्य गुरुदेव की उस राष्ट्र-निर्माण की संकल्पना को जीवंत करने का माध्यम बना, जिसमें संस्कारित और राष्ट्रनिष्ठ युवा ही उज्ज्वल भारत के निर्माण के प्रमुख आधार हैं।

विगत दिनों स्वस्थ एवं संतुलित जीवनशैली को बढ़ावा देने तथा स्वास्थ्य संरक्षण में यज्ञोपैथी की उपयोगिता के प्रति जन-जागरूकता विकसित करने के उद्देश्य से देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आयोजित 'यज्ञोपैथी कार्यशाला एवं चिकित्सा शिविर' का सफलतापूर्वक समापन हुआ।

कार्यशाला के माध्यम से प्रतिभागियों को यज्ञोपैथी के वैज्ञानिक एवं स्वास्थ्यपरक पक्षों से परिचित कराया गया। साथ ही, मधुमेह, थायराइड, तनाव सहित विभिन्न स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं में यज्ञोपैथी एवं समग्र जीवनशैली की भूमिका पर विशेषज्ञों द्वारा मार्गदर्शन प्रदान किया गया।

कार्यशाला के दौरान प्रतिभागियों को स्वास्थ्य के प्रति सजग रहने, नियमित दिनचर्या अपनाने तथा प्राकृतिक एवं समग्र स्वास्थ्य पद्धतियों को जीवन का हिस्सा बनाने के लिए प्रेरित किया गया। कार्यशाला के समापन अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के माननीय उपाध्यक्ष महोदय ने प्रतिभागियों को प्रमाणपत्र प्रदान किए।

उन्होंने प्रतिभागियों से संवाद करते हुए उनके अनुभवों एवं स्वास्थ्य संबंधी विषयों पर चर्चा की तथा स्वस्थ जीवन के लिए निरंतर अभ्यास, अनुशासित दिनचर्या और सकारात्मक जीवन-दृष्टि के महत्त्व पर बल दिया। इस अवसर पर प्रतिभागियों ने कार्यशाला के अनुभव साझा करते हुए इसे स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता एवं व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान करने वाली उपयोगी पहल बताया।

कार्यक्रमों की शृंखला में विगत दिनों पर्यावरण संरक्षण एवं हरित परिसर के विकास की दिशा में एक सार्थक पहल के अंतर्गत देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में भारत स्काउट्स एवं गाइड्स के तत्त्वावधान में वृक्षारोपण कार्यक्रम आयोजित किया गया।

कार्यक्रम के माध्यम से प्रकृति संरक्षण, पर्यावरणीय संतुलन एवं स्वच्छ-हरित परिवेश के प्रति जागरूकता का संदेश दिया गया। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के माननीय उपाध्यक्ष महोदय ने वृक्षारोपण कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया। उन्होंने पर्यावरण संरक्षण को केवल सामाजिक दायित्व ही नहीं, बल्कि भावी पीढ़ियों के प्रति हमारी सामूहिक जिम्मेदारी बताते हुए अधिकाधिक वृक्षारोपण एवं उनके संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया।

कार्यक्रम में भारत स्काउट्स एवं गाइड्स के प्रतिनिधियों, विश्वविद्यालय के अधिकारीगण, शिक्षकगण एवं विद्यार्थियों ने सहभागिता की। उपस्थित प्रतिभागियों ने पौधों के संरक्षण एवं संवर्द्धन के प्रति संकल्प व्यक्त करते हुए पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाने का संदेश दिया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में आयोजित यह वृक्षारोपण कार्यक्रम प्रकृति के संरक्षण, जैव-विविधता के संवर्द्धन तथा स्वच्छ, स्वस्थ एवं हरित भविष्य के निर्माण की दिशा में एक प्रेरणादायी पहल रहा।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में शिक्षा, संस्कृति, नवाचार एवं युवा विकास से जुड़े विभिन्न महत्त्वपूर्ण विषयों को लेकर विशिष्ट अतिथियों के साथ आत्मीय एवं सार्थक भेंटवार्त्ताओं का क्रम रहा। इसी क्रम में आई.आई.एम. त्रिची के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के अध्यक्ष एवं एशियन पेन्ट्स के सह-प्रवर्तक श्री जलज दानी जी का विश्वविद्यालय आगमन एवं विश्वविद्यालय के उपाध्यक्ष महोदय द्वारा स्वागत क्रम संपन्न हुआ।

इसी क्रम में जे.एस.एस. विश्वविद्यालय के वित्त अधिकारी श्री मनोज कुमार जी एवं श्री आर. राजन्ना जी का भी विश्वविद्यालय आगमन हुआ। संवाद के दौरान मूल्यपरक एवं संस्कृति-आधारित शिक्षा को अधिक प्रभावी बनाने तथा भावी पीढ़ी के समग्र विकास की संभावनाओं पर चर्चा हुई।

वहीं Innovions Solutions Pvt. Ltd. की टीम एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कंप्यूटर विज्ञान विभाग के अंतर्गत Institute of Artificial Intelligence के विशेषज्ञों ने भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय के उपाध्यक्ष से भेंट की। इस अवसर पर कृत्रिम बुद्धिमत्ता, तकनीकी नवाचार एवं शिक्षा के क्षेत्र में उभरती संभावनाओं तथा भावी सहयोग के विभिन्न आयामों पर सार्थक संवाद हुआ।

यह संवाद प्रौद्योगिकी एवं मूल्यपरक शिक्षा के समन्वय से नई संभावनाओं को विकसित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण रहा। इन सभी भेंटवार्त्ताओं ने ज्ञान, संस्कृति, नवाचार एवं शिक्षा के समन्वय के माध्यम से सहयोग के नए आयामों को आगे बढ़ाने की संभावनाओं को अधिक सुदृढ़ किया। ❑

परिवर्तन के महान क्षण

परिवर्तन के महान क्षण आ पहुँचे हैं। वर्ष 2026 ई. से 2050 ई. तक के 24 वर्ष धरती के लिए देवमुहूर्त बनकर आए हैं। यह प्रज्ञायुग की परिवर्तन वेला है। युगसाधकों का साधनाकाल है। अब तक इक्कीसवीं सदी का एक-चौथाई समय महाविष के शमन व समापन में गुजरा है। युगाराध्य युगऋषि ने अपने महातप से इसे संभव और संपन्न किया है।

बीते दिनों जो महाविष उभरा और फैला, उसे हम सबने आतंकवाद, प्रदूषण, युद्ध-विभीषिकाओं के अनेकों रूपों में अनुभव किया है। यही हमारे सामने शारीरिक-मानसिक रोगों, नशे की बढ़ती लत, बीमारी-महामारी के विविध रूप बनकर आया है। इससे अनगिनत दुर्गुण-दुष्वृत्तियाँ जन्मी और फैली हैं। युग प्रत्यावर्तन-परिवर्तन का महासंकल्प लेने वाले महाकाल ने इस अवधि में हम सबको बड़े कराल-विकराल अनुभव कराए हैं। भय के विविध रूपों से कंपित होते हुए यह अवधि बीती है।

अब भगवान महाकाल ने अभयदान देने की मुद्रा धारण की है। उलटे को उलटकर सीधा किए जाने का समय आ चुका है। धरती का विषयोग बीतने की ओर है। विष फैलाने वाले विषैले विषधर अब अपने-अपने बिलों की ओर प्रस्थान करने के लिए विवश हैं। अमृतयोग की अमृतवेला अमृतयुग के आगमन को संभव बना रही है। संकटों के समय की समाप्ति होकर सुखमय समय आरंभ होने को है। आने वाले ये 24 वर्ष अद्भुत हैं। मानव इतिहास में कभी-कभी ऐसा समय आता है, जो किसी इक्के-दुक्के मनुष्य का नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव जाति के भाग्य और भविष्य के सुखमय व समुज्ज्वल स्वरूप का निर्माण-निर्धारण करता है। इस देवमुहूर्त में किसी गाँव-शहर के नहीं, बल्कि समूची धरती के दुःख हर लिए जाते हैं। संपूर्ण धरती और धरतीवासियों पर सुखों की वृष्टि और सुखमय जीवन की सृष्टि होती है।

इस कार्य को किसी मनुष्य के द्वारा नहीं, बल्कि स्वयं प्रकृति के द्वारा होना है। जगत् और जीवन का निर्माण करने वाली आदिमाता स्वयं जगत् को जीवन का एवं जीवन को अमृत का वरदान देंगी। जीवनप्रदायिनी अब स्वयं सबको नवजीवन का उपहार देंगी। हम सब युगदेवता के मार्गदर्शन व संरक्षण में बीते दीर्घकाल से युग-साधना कर रहे युगसाधक इस संजीवनी सूचना से स्वयं नवजीवन-नवप्राण पाकर औरों की मूर्च्छा दूर कर सकते हैं। उन्हें विषाद-अवसाद से मुक्त कर सकते हैं। उनमें उत्साह, उमंग-उल्लास की तरंगें उत्पन्न कर सकते हैं। हम सब धन्य हैं, जिन्हें इस दुर्लभ देवमुहूर्त में जीवन का सुअवसर मिला है। इस अमृतयुग में हमें अमृत-वितरण का अवसर मिला है।

भला ऐसे अवसर कहाँ सबको उपलब्ध हो पाते हैं। इतिहास को सभी पुस्तकों में पढ़ते हैं; लेकिन इतिहास को लिखते हुए, बनते हुए देखने का अवसर विरले ही पाते हैं। इन विरलों में भी और अधिक विरले वे होते हैं, जो इतिहास को लिखते और बनाते हैं। युगदेवता ने हम सबको अपने साथ युग-साधना में शामिल कर यह अद्भुत

अवसर प्रदान किया है। यह ठीक है कि करना सब कुछ उनको ही है, परंतु किसी-न-किसी रूप में हम उनके सहयोगी-सहभागी तो हैं ही। भगवान के साथ साझेदारी करने का हमने संकल्प लिया है। हमने इसकी दीक्षा प्राप्त की है। अब दक्षिणा देने का सुअवसर आ गया है। इसके लिए हमें कुछ अधिक नहीं करना है। बस, भगवान की बातें और वचनों को सबको सुनाना है। उनकी युगगीता का ज्ञान-संदेश हरेक तक पहुँचाना है। विषादग्रस्त होकर गांडीव छोड़कर कायरता की कालिख अपने माथे पर लगाने के लिए तत्पर अर्जुन को इस दुष्कृत से विरत करना है।

एक नहीं, सभी युग सैनिकों- युग सेनानियों को भरोसा दिलाना है कि कर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में अंधकार अवश्य छाया था, विषैले बाण भी चले थे; पर प्रभु हमें छोड़कर कहीं नहीं गए। जरा ध्यान से घटते-छँटते हुए अँधेरे को देखो, विषैले बाणों के समाप्त होते हुए विष की ओर देखो। कान लगाकर उनके पांचजन्य शंख का शंखनाद सुनो। उस विजयघोष को सुनो, जो बता रहा है कि अधर्म की पराजय और धर्म की विजय हो रही है। धर्म संस्थापना की, धर्मराज्य की प्रतिष्ठापना का समय आ पहुँचा है। यह बदला हुआ समय जीवनरक्षा के लिए गुहार लगाने के लिए नहीं, बल्कि नवजीवन के निर्माण के लिए है।

ब्रह्मवेला का ब्राह्ममुहूर्त शयन के लिए नहीं, जागरण के लिए होता है। देवमुहूर्त देवकार्य के दिव्य प्रयोजन के लिए होता है। जब से हम सब युगावतार की युगलीला से जुड़े हैं, तब से अब तक हमने सारा समय बस इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य की बातें कहने-सुनने में लगाया है; लेकिन अब कहने-सुनने का नहीं, करने का समय आ गया है। 2026 ई. के बाद के 24 वर्ष इसी के लिए हैं। यह अवधि युगऋषि के द्वारा की गई महासाधना की सिद्धि-वेला है। युग-परिवर्तन की बात बताने-समझाने के स्थान पर यह समय सबको युग-परिवर्तन के दृश्य दिखाने के लिए है।

वाल्मीकि रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने प्रभु श्रीराम की विशेषताओं को गिनाते हुए कहा है—"राम एक लक्ष्य के लिए दो बार शर-संधान नहीं करते। उनका हर बाण अमोघ-अचूक होता है, जो लक्ष्यबेध किए बिना नहीं रहता। इसीलिए तो रामबाण अमोघ व अचूक होने का पर्याय बन गया।" महर्षि वाल्मीकि प्रभु श्रीराम की एक विशेषता और बताते हैं—"प्रभु सत्यसंकल्प हैं। उनका संकल्प कभी मिथ्या नहीं होता। उनके वचन सदा ही समय आने पर सत्य होते हैं।"

आने वाले ये 24 वर्ष अद्भुत हैं। मानव इतिहास में कभी-कभी ऐसा समय आता है, जो किसी इक्के-दुक्के मनुष्य का नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव जाति के भाग्य और भविष्य के सुखमय व समुज्ज्वल स्वरूप का निर्माण-निर्धारण करता है। इस देवमुहूर्त में किसी गाँव-शहर के नहीं, बल्कि समूची धरती के दुःख हर लिए जाते हैं। संपूर्ण धरती और धरतीवासियों पर सुखों की वृष्टि और सुखमय जीवन की सृष्टि होती है।

युग बदला है, पर प्रभु नहीं बदले हैं। श्रीराम सदा ही सत्यसंकल्प और सत्यनिष्ठ हैं। 'इक्कीसवीं सदी-उज्जवल भविष्य' उनका महासंकल्प और सत्यवचन है। जो अब शनैः-शनैः क्रमिक रूप से

घटित होने की ओर है। रण रावण के साथ हो रहा था या फिर कुरुक्षेत्र में कौरवों के साथ, विजय एक दिन में नहीं मिलनी थी। दोनों ही संघर्ष कठिन थे।

रावण स्वयं महायोद्धा था; फिर कुंभकर्ण, मेघनाद, अतिकाय-अकंपन भी किसी से कम नहीं थे। ये सभी ऐसे योद्धा थे, जिन्होंने देवों को पराजित किया था। इनसे संघर्ष अति कठिन था। बीच में वीरघातिनी के प्रहार से लक्ष्मण मूर्च्छित भी हुए। प्रभु स्वयं भी नागपाश में आबद्ध हुए। ऐसा समय एक बार नहीं, अनेकों बार आया, जब लगा कि रावण अवश्य विजयी हो जाएगा, पर अंत में आसुरी शक्ति-ईश्वरीय शक्ति के सम्मुख पराजित हुई। अपनी नाभि में अमृत रखने वाले रावण को कुल-कुटुंबियों के साथ मृत्यु प्राप्त हुई। धरती पर रामराज्य स्थापित हुआ।

कुरुक्षेत्र की कथा भी कुछ ऐसी ही रही। दुर्योधन की रक्षा करने वाले भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा सभी महाबली थे। भीष्म ने स्वयं परशुराम के पराक्रम को तेजहीन कर दिया था। कर्ण अभेद्य स्वर्णकवच पहने जन्मा था। अश्वत्थामा तो अमर थे। यह महासमर अति भयानक था। इसमें धर्म महारथी 'वीर अभिमन्यु' को अपना बलिदान देना पड़ा, लेकिन अधर्म फिर भी विजयी न हो सका। प्रभु श्रीकृष्ण का ईश्वरीय संकल्प पूर्ण हुआ। आखिर धर्मराज्य की स्थापना होकर रही। युगावतार इस बार भी कम बलवान नहीं हैं। घात-प्रतिघात अनेकों हुए। प्रभु के साथ हम सबने भी अनेकों घाव सहे, लेकिन अंत में उनकी शतवर्षीय साधना अपनी सफलता व सिद्धि की ओर बढ़ चली। संघर्ष के क्षण अब सृजन के क्षण बनते जा रहे हैं। परिवर्तन के महान क्षण आ ही पहुँचे।

वर्ष 2026 ई. से 2050 ई. की समयावधि इस सृजन-साधना की है। यह सृजन-साधना-अवधि भी पहले की ही तरह आठ-आठ वर्षों के तीन चरणों में संपूर्ण होगी। इसमें से प्रथम आठ वर्ष अर्थात वर्ष 2026 ई. से 2034 ई. तक का समय आसुरी अँधेरे के घटने व छँटने का है। असुरों की सेना अपने अँधेरों के साथ, फिर से अँधेरों में पाताल आदि अंधलोकों में छिपने-दुबकने के लिए विवश होगी। मरण या पलायन के अतिरिक्त उनके पास कोई विकल्प न बचेगा।

भला ऐसे अवसर कहाँ सबको उपलब्ध हो पाते हैं। इतिहास को सभी पुस्तकों में पढ़ते हैं; लेकिन इतिहास को लिखते हुए, बनते हुए देखने का अवसर विरले ही पाते हैं। इन विरलों में भी और अधिक विरले वे होते हैं, जो इतिहास को लिखते और बनाते हैं। युगदेवता ने हम सबको अपने साथ युग-साधना में शामिल कर यह अद्‌भुत अवसर प्रदान किया है।

इसके बाद के आठ वर्ष अर्थात वर्ष 2034 ई. से 2042 ई. तक की अवधि भारत व विश्व में परिवर्तन की अनेकों सुखद संभावनाओं को साकार करेगी। इसके बाद के अंतिम आठ वर्ष यानी वर्ष 2042 ई. से 2050 ई. का समय प्रज्ञायुग की प्रतिष्ठापना का होगा। प्रज्ञापुरुष के द्वारा प्रज्ञायुग की प्रतिष्ठापना के सत्य को सभी साकार होते हुए देख सकेंगे। यही सत्य है—जो अपने समय में घटित हुए बिना न रहेगा। ❑

अपनों से अपनी बात

यह ज्योति अखण्ड बनी रहे



कुछ निर्णय ऐसे होते हैं, जिन्हें लेना जितना कठिन होता है, उन्हें शब्दों में व्यक्त करना उससे भी अधिक कठिन होता है। अखण्ड ज्योति के मासिक सदस्यता शुल्क में परिवर्तन का निर्णय भी ऐसा ही एक निर्णय है।

यह कोई सामान्य प्रशासनिक निर्णय नहीं है, बल्कि अत्यंत विचार-विमर्श, परिस्थितियों के गहन मूल्यांकन और लंबे समय तक यथासंभव इस परिवर्तन को टालने के प्रयास के बाद लिया जा रहा एक अत्यंत कठिन निर्णय है।

इसे स्वीकार करते हुए मन में किसी प्रकार की प्रसन्नता नहीं, बल्कि एक गहरी पीड़ा और भारीपन की अनुभूति है। मन बार-बार यही चाहता रहा कि अखण्ड ज्योति के सदस्यता-शुल्क को यथावत् रखा जा सके, ताकि कोने-कोने में रहने वाला प्रत्येक परिवार बिना किसी अतिरिक्त आर्थिक भार के इस विचार-यात्रा से जुड़ा रह सके, किंतु वर्तमान परिस्थितियों की वास्तविकता और भारत सरकार के बदलते नियमों, व्यवस्थाओं तथा आवश्यक अनुपालनों को ध्यान में रखते हुए अब इस दिशा में आवश्यक परिवर्तन करना अपरिहार्य हो गया है।

अखण्ड ज्योति को केवल एक मासिक पत्रिका के रूप में देखना उसके वास्तविक स्वरूप को बहुत छोटा कर देना होगा। यह कागज के कुछ पृष्ठों पर प्रकाशित सामग्री मात्र नहीं है। यह एक विचार-परंपरा है, एक चेतना-प्रवाह है, एक साधना है और एक ऐसी अखण्ड यात्रा है, जिसका उद्देश्य मनुष्य के भीतर सोई हुई, छिपी हुई श्रेष्ठताओं को जगाना है।

इसके प्रत्येक अंक का अपना एक भावलोक है। इसके प्रत्येक पृष्ठ के पीछे केवल लेखन का श्रम नहीं; बल्कि चिंतन, मनन, अध्ययन, अनुसंधान, संपादन और सबसे बढ़कर एक गहरी आध्यात्मिक निष्ठा कार्य करती है। जब किसी पाठक के हाथ में अखण्ड ज्योति का एक अंक पहुँचता है तो वह केवल मुद्रित शब्दों का संकलन नहीं होता; उसके पीछे अनगिनत घंटों का मौन श्रम, अनेक स्तरों पर किया गया अध्ययन और यह सतत प्रयास होता है कि जो कुछ पाठक तक पहुँचे, वह उसके जीवन को भीतर से स्पर्श करने वाला हो।

इस पत्रिका की सबसे बड़ी विशेषता यही रही है कि इसमें शब्दों को केवल सूचना देने का माध्यम नहीं माना गया। प्रत्येक शब्द के पीछे एक उद्देश्य रहा है। प्रत्येक विषय को इस दृष्टि से देखा जाता रहा है कि वह वर्तमान युग की आवश्यकता से किस प्रकार जुड़ता है, मनुष्य के जीवन में उसका क्या महत्त्व है, उसकी चेतना को किस दिशा में ले जाया जा सकता है और किस प्रकार उसे पूज्य गुरुदेव की विचारधारा के आलोक में अधिक सार्थक बनाया जा सकता है।

किसी विषय को चुनना, उसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन करना, प्रामाणिक संदर्भों को खोजना, उपलब्ध सामग्री का परीक्षण करना, विचारों को क्रमबद्ध करना, भाषा को सरल और प्रभावशाली बनाना तथा अंततः उसे ऐसे रूप में प्रस्तुत करना कि वह विद्वान पाठक के लिए भी चिंतन का विषय बने और सामान्य पाठक के लिए भी जीवनोपयोगी प्रेरणा—यह पूरी प्रक्रिया अपने आप में एक साधना है।

आज सूचना का युग है। एक बटन दबाते ही हजारों सूचनाएँ सामने आ जाती हैं, किंतु सूचना और ज्ञान में जो अंतर है, वह आज पहले से अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। सूचना बहुत है, परंतु जीवन को दिशा देने वाली प्रज्ञा का अभाव अनुभव होता है।

शब्द बहुत हैं, परंतु वे शब्द जो अंत:करण को छूकर जीवन में परिवर्तन की प्रेरणा बन सकें, उनकी आवश्यकता आज भी उतनी ही है। अखण्ड ज्योति ने इसी आवश्यकता को समझते हुए सदैव यह प्रयास किया है कि वह केवल जानकारी न दे, बल्कि विचार दे; केवल विचार न दे, बल्कि दृष्टि दे; केवल दृष्टि न दे, बल्कि जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाने की प्रेरणा दे।

यही कारण है कि इसके एक-एक शब्द के पीछे गहन अनुसंधान और गंभीर चिंतन का क्रम चलता रहा है। अनेक बार एक छोटे-से आलेख के पीछे जितना अध्ययन और श्रम होता है, वह पाठक को दिखाई नहीं देता।

पाठक के सामने केवल कुछ पृष्ठ होते हैं, लेकिन उन पृष्ठों तक पहुँचने से पहले अनेक प्रश्नों पर विचार किया जाता है। क्या विषय आज के समय के लिए प्रासंगिक है? क्या इसकी प्रस्तुति तथ्यपूर्ण है? क्या इसमें आध्यात्मिक दृष्टि और वैज्ञानिक विवेक के बीच संतुलन है? क्या इसकी भाषा सरल होते हुए भी विचार की गहराई को बनाए रख सकती है?

क्या यह पाठक को केवल प्रभावित करेगी या उसे अपने जीवन में कुछ करने की प्रेरणा भी देगी? ऐसे अनेक प्रश्नों के उत्तर खोजने के बाद सामग्री को अंतिम रूप दिया जाता है और इन सभी प्रयासों के पीछे एक और गहरी प्रेरणा सदैव उपस्थित रही है—पूज्य गुरुदेव की विचारधारा।

अखण्ड ज्योति का इतिहास वस्तुत: विचारों की उस अखंड धारा का इतिहास है, जिसे पूज्य गुरुदेव ने अपने तप, साधना, चिंतन और जीवन-समर्पण से प्रवाहित किया। उनके लिए साहित्य केवल लेखन नहीं था।

उनके शब्दों में जीवन की दिशा बदलने की क्षमता थी। वे शब्दों के माध्यम से केवल जानकारी नहीं देते थे, बल्कि मनुष्य के भीतर सोई हुई चेतना को झकझोरते थे। उनके विचारों में तर्क था, विज्ञान था, अध्यात्म था, करुणा थी, साहस तथा और सबसे बढ़कर मनुष्य को देवत्व की ओर ले जाने की प्रबल आकांक्षा थी।

आज जब अखण्ड ज्योति के पृष्ठों पर उनके विचारों की परंपरा को आगे बढ़ाने का प्रयास होता है तो भीतर यह अनुभूति रहती है कि हम केवल अपनी ओर से कुछ लिख नहीं रहे हैं. हम उस महान विचार-अग्नि को युग की वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप अभिव्यक्ति देने का एक विनम्र प्रयास कर रहे हैं।

ऐसा लगता है कि पूज्य गुरुदेव के विचारों की वही अग्नि इन पृष्ठों पर अवतरित होती रही है, वही प्रकाश इन शब्दों के माध्यम से पाठकों तक पहुँचता रहा है और वही चेतना आज भी मनुष्य को अपने भीतर झाँकने, स्वयं को सँवारने और समाज के लिए उपयोगी बनने की प्रेरणा देती है।

इसीलिए अखण्ड ज्योति की गुणवत्ता से समझौता करना कभी भी सहज विकल्प नहीं रहा। यदि उद्देश्य केवल किसी पत्रिका का प्रकाशन करना होता तो अनेक ऐसे रास्ते निकाले जा सकते थे, जिनसे लागत कम हो जाती।

अनुसंधान का स्तर कम किया जा सकता था, संपादकीय प्रक्रिया को छोटा किया जा सकता था, विषयों के चयन में अधिक सरलता अपनाई जा सकती थी और सामग्री की गहराई को कम किया जा सकता था, लेकिन तब क्या वह अखण्ड ज्योति रहती, जिसे पाठकों ने इतने वर्षों से अपने जीवन का हिस्सा बनाया है?

क्या वह उस परंपरा के साथ न्याय होता जिसका आधार ही गंभीर चिंतन, आत्मपरिष्कार और लोक-मंगल है ? शायद नहीं। इसलिए प्रयास यही रहा है कि बदलती परिस्थितियों के बावजूद पत्रिका के मूल स्वरूप को अक्षुण्ण रखा जाए। उसके पृष्ठों पर विचारों की गरिमा बनी रहे। भाषा में आत्मीयता बनी रहे। विषयों में प्रासंगिकता बनी रहे। अनुसंधान में गंभीरता बनी रहे और सबसे महत्त्वपूर्ण, उसके भीतर से वह आध्यात्मिक ऊष्मा निरंतर प्रवाहित होती रहे, जिसके कारण अखण्ड ज्योति केवल एक प्रकाशन नहीं, बल्कि एक जीवंत विचार-संवाद बन सकी है।

वर्तमान समय में प्रकाशन की लागत में अनेक स्तरों पर वृद्धि हुई है। कागज, मुद्रण, पैकेजिंग, परिवहन, डाक एवं वितरण जैसी व्यवस्थाओं से जुड़े खरचों में परिवर्तन आया है। इसके साथ ही भारत सरकार द्वारा समय-समय पर किए जा रहे नियमों और प्रशासनिक व्यवस्थाओं के बदलाव तथा उनसे संबंधित आवश्यक अनुपालनों ने भी प्रकाशन की पूरी प्रक्रिया को प्रभावित किया है।

किसी भी संस्था के लिए इन नियमों का पालन करना केवल एक औपचारिकता नहीं, बल्कि जिम्मेदारी है। व्यवस्थित लेखा-प्रणाली, आवश्यक प्रशासनिक प्रक्रियाएँ, प्रकाशन संबंधी अनुपालन और वितरण-व्यवस्था को सुचारु रखना हमारी जिम्मेदारी है और इससे किसी प्रकार का समझौता करना उचित नहीं होगा।

इन सभी परिस्थितियों का समुच्चय अब ऐसी, स्थिति उत्पन्न कर रहा है, जिसमें पुरानी सदस्यता शुल्क के आधार पर अखण्ड ज्योति की गुणवत्ता और नियमितता को उसी स्तर पर बनाए रखना कठिन होता जा रहा है। लंबे समय तक बढ़ती हुई लागतों का भार अपने स्तर पर वहन करने का प्रयास किया गया। प्राथमिकता हमेशा यही रही कि इसका प्रभाव पाठकों पर न पड़े। लेकिन जब परिस्थितियों और उपलब्ध संसाधनों के बीच अंतर लगातार बढ़ता जाता है, तब किसी-न-किसी समय व्यावहारिक निर्णय लेना आवश्यक हो जाता है। यही वह क्षण है, जहाँ मन सबसे अधिक दुविधा में पड़ता है।

एक ओर है पाठकों के प्रति आत्मीयता और उनकी आर्थिक संवेदनशीलता; दूसरी ओर है अखण्ड ज्योति को उसकी मूल गरिमा और गुणवत्ता के साथ जीवित रखने का दायित्व। एक ओर मन कहता है कि शुल्क न बढ़े, दूसरी ओर परिस्थितियाँ कहती हैं कि यदि व्यवस्था को दीर्घकाल तक स्थिर रखना है तो परिवर्तन आवश्यक है। इसी द्वंद्व के बीच यह निर्णय लिया गया है।

यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह शुल्क-वृद्धि किसी व्यावसायिक लाभ की दृष्टि से नहीं की जा रही है। इसका उद्देश्य किसी प्रकार का आर्थिक विस्तार या सुविधा-संचय नहीं है। यह मूलतः उस प्रकाशन-व्यवस्था को निरंतर चलाए रखने की आवश्यकता से उत्पन्न हुआ निर्णय है, जिसके माध्यम से अखण्ड ज्योति अपने पाठकों तक पहुँचती है।

इस निर्णय के पीछे सबसे बड़ी चिंता यही है कि अखण्ड ज्योति की वह गुणवत्ता बनी रहे, जिसके कारण पाठकों का विश्वास वर्षों से इसके साथ जुड़ा हुआ है। यदि किसी पत्रिका के पृष्ठों पर प्रकाशित सामग्री का स्तर धीरे-धीरे कम होने लगे, यदि अनुसंधान की गहराई घटने लगे, यदि संपादकीय प्रक्रिया में आवश्यक सावधानी न रह जाए या यदि केवल लागत कम करने के लिए सामग्री को सतही बना दिया जाए, तो वह केवल एक आर्थिक परिवर्तन नहीं होगा; वह उस विश्वास को प्रभावित करेगा, जो पाठकों ने इस पत्रिका के प्रति बनाया है और इस विश्वास की रक्षा हमारे लिए सर्वोच्च प्राथमिकता है।

अखण्ड ज्योति के साथ जुड़ा संबंध किसी ग्राहक और प्रकाशक का संबंध नहीं है। यह उससे कहीं अधिक गहरा और आत्मीय संबंध है। कितने ही परिवार ऐसे हैं, जिनके घर में यह पत्रिका वर्षों

से नियमित रूप से आती रही है। कितने ही ऐसे पाठक हैं, जिनके लिए इसका प्रत्येक अंक महीने की प्रतीक्षा का विषय होता है।

कितने ही बुजुर्गों ने इसके माध्यम से अपने जीवन की साधना को दिशा दी है। कितने ही युवाओं ने इसमें अपने प्रश्नों के उत्तर खोजे हैं। कितने ही माता-पिता ने इसके विचारों के माध्यम से अपने बच्चों को संस्कार देने का प्रयास किया है। कितने ही साधकों ने इसके पृष्ठों में पूज्य गुरुदेव की विचार-चेतना का स्पर्श अनुभव किया है। इस आत्मीयता का कोई आर्थिक मूल्य नहीं हो सकता।

सदस्यता शुल्क केवल इस भौतिक व्यवस्था का एक छोटा-सा हिस्सा है। जिसके माध्यम से यह विचार-यात्रा आपके घर तक पहुँचती है। वास्तविक मूल्य तो उन विचारों का है, जो मनुष्य के भीतर परिवर्तन की प्रक्रिया आरंभ करते हैं।

वास्तविक मूल्य उस प्रेरणा का है, जो किसी निराश व्यक्ति को फिर से उठ खड़े होने का साहस देती है। वास्तविक मूल्य उस विवेक का है, जो किसी युवा को गलत दिशा में जाने से रोक सकता है। वास्तविक मूल्य उस करुणा का है, जो किसी व्यक्ति को अपने सुख से आगे बढ़कर किसी दूसरे के दुःख को समझने की प्रेरणा देती है। वास्तविक मूल्य उस आत्मबोध का है, जो मनुष्य को यह अनुभव कराता है कि उसका जीवन केवल अपने लिए नहीं, बल्कि व्यापक लोक-मंगल के लिए भी है।

इसीलिए अखण्ड ज्योति की यात्रा को केवल प्रकाशन की यात्रा मानना उसके वास्तविक उद्देश्य को समझने में असफल होना होगा। यह एक दीप से दूसरे दीप तक प्रकाश पहुँचाने की यात्रा है। पूज्य गुरुदेव ने अपने जीवन में जिस विचार-ज्योति को प्रज्वलित किया, अखण्ड ज्योति उसी ज्योति का एक निरंतर माध्यम रही है। एक घर में पहुँचा हुआ एक अंक किसी दूसरे व्यक्ति तक पहुँचता है।

एक विचार किसी एक मन में जन्म लेता है और फिर अनेक मनों में फैल जाता है। एक छोटा-सा वाक्य किसी व्यक्ति की जीवन-दृष्टि बदल देता है। एक प्रेरक प्रसंग किसी युवा के भीतर सेवा का संकल्प जगा देता है। एक आध्यात्मिक चिंतन किसी परिवार में संवाद, संयम और सद्भाव की शुरुआत कर सकता है। यही उस ज्योति की शक्ति है और यही कारण है कि उसे निरंतर जलाए रखना आवश्यक है।

एक दीपक के लिए तेल चाहिए, बाती चाहिए और उसे सुरक्षित रखने की व्यवस्था चाहिए। उसी प्रकार विचारों की इस अखण्ड धारा को भी एक सुव्यवस्थित प्रकाशन, संपादन, मुद्रण और वितरण-व्यवस्था की आवश्यकता होती है। सदस्यता शुल्क में किया जा रहा परिवर्तन इसी व्यवस्था को स्थिर रखने का एक आवश्यक माध्यम है।

यह निर्णय लेते हुए मन में सबसे अधिक यही भाव है कि कहीं ऐसा न हो कि आर्थिक कारणों से कोई आत्मीय पाठक अखण्ड ज्योति से दूर हो जाए। इस संभावना का विचार ही मन को व्यथित करता है, क्योंकि हमारी दृष्टि में यह पत्रिका किसी विशेष वर्ग के लिए नहीं है। यह उस प्रत्येक व्यक्ति के लिए है, जो अपने जीवन को बेहतर बनाना चाहता है, अपने विचारों को ऊँचा उठाना चाहता है और अपने भीतर की श्रेष्ठता को जगाना चाहता है।

इसीलिए इस परिवर्तन को बताते हुए संवेदना भी है और संकोच भी, लेकिन साथ ही एक विश्वास भी है—हमारे पाठक इस विवशता को समझेंगे। वे समझेंगे कि यह निर्णय किसी सुविधा या लाभ के लिए नहीं, बल्कि अखण्ड ज्योति की निरंतरता के लिए लिया गया है। वे समझेंगे कि इसके पीछे वर्तमान परिस्थितियों की वास्तविकता है।

वे समझेंगे कि बदलते नियमों और आवश्यक अनुपालनों का पालन करना हमारी जिम्मेदारी है। वे समझेंगे कि बढ़ती हुई प्रकाशन और वितरण

लागत के बीच पत्रिका की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए कुछ कठिन निर्णय आवश्यक हो जाते हैं और वे यह भी समझेंगे कि इन सबके बावजूद हमारी पहली चिंता आज भी वही है—अखण्ड ज्योति अधिकाधिक लोगों तक पहुँचे और उसकी विचार-ज्योति अखण्ड बनी रहे।

आज जब संसार अनेक प्रकार के संकटों से गुजर रहा है, तब मनुष्य को केवल बाहरी विकास की नहीं, भीतर के विकास की भी आवश्यकता है। तकनीक ने जीवन को सुविधाजनक बनाया है, लेकिन मनुष्य के सामने मानसिक, सामाजिक और नैतिक चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं। सूचनाओं की गति बढ़ी है, लेकिन आत्मचिंतन की गति कम हुई है। भौतिक साधन बढ़े हैं, लेकिन संतोष का प्रश्न बना हुआ है। संवाद के साधन बढ़े हैं, लेकिन आत्मीयता का संकट भी दिखाई देता है।

ऐसे समय में पूज्य गुरुदेव के विचारों की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। उन्होंने मनुष्य को बाहर की दुनिया बदलने से पहले अपने भीतर परिवर्तन लाने की प्रेरणा दी। उन्होंने व्यक्ति-निर्माण को समाज-निर्माण का आधार माना। उन्होंने साधना को जीवन से जोड़ा और अध्यात्म को व्यवहार से। उन्होंने ज्ञान को केवल पढ़ने की वस्तु नहीं माना, बल्कि उसे जीवन में उतारने की शक्ति के रूप में देखा। अखण्ड ज्योति का प्रयास इसी दृष्टि को समय के साथ संवाद कराते हुए आगे ले जाने का है।

इसलिए इसके पृष्ठों पर आज भी केवल पुराने विचारों की पुनरावृत्ति नहीं, बल्कि उन विचारों को वर्तमान जीवन की चुनौतियों से जोड़ने का प्रयास होता है। विज्ञान के प्रश्न हों या शिक्षा के, परिवार की समस्याएँ हों या युवाओं की चुनौतियाँ, समाज में बढ़ती असमानता हो या पर्यावरण का संकट, तकनीक और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नए प्रश्न हों या मनुष्य के भीतर बढ़ता तनाव—हर क्षेत्र में यह देखने का प्रयास किया जाता है कि पूज्य गुरुदेव की मानव-केंद्रित और आत्मोन्नति की दृष्टि आज के समाज को क्या दिशा दे सकती है।

किसी पुस्तक का सबसे बड़ा सम्मान उसका सुंदर मुद्रित होना नहीं, बल्कि उसका किसी व्यक्ति के जीवन को सुंदर बना देना है। अखण्ड ज्योति के लिए भी यही सबसे बड़ा उद्देश्य है। यदि उसका कोई एक आलेख किसी व्यक्ति को निराशा से बाहर निकाल सके; यदि उसका कोई एक विचार किसी परिवार में प्रेम बढ़ा सके; यदि उसकी कोई एक प्रेरणा किसी युवा को राष्ट्र और मानवता के लिए कुछ करने को प्रेरित कर सके; यदि उसका कोई एक आध्यात्मिक चिंतन किसी साधक को अपने भीतर की यात्रा पर ले जा सके, तो उसके प्रकाशन का उद्देश्य सार्थक हो जाता है।

हमारी प्रार्थना और संकल्प यही है कि सदस्यता शुल्क में यह परिवर्तन पत्रिका की पहुँच को सीमित करने के बजाय उसकी गुणवत्ता और निरंतरता को सुरक्षित करने में सहायक बने। हमारी कोशिश रहेगी कि पाठकों को इसके प्रत्येक अंक में वही आत्मीयता मिले; वही विचार-गहराई मिले; वही अनुसंधान की गंभीरता मिले और वही प्रेरक चेतना अनुभव हो, जिसके कारण यह पत्रिका पीढ़ियों से पाठकों के जीवन का हिस्सा बनी हुई है।

हम यह भी चाहते हैं कि आने वाली पीढ़ियाँ अखण्ड ज्योति को केवल एक पत्रिका के रूप में न जानें, बल्कि उसे एक जीवंत विचार-परंपरा के रूप में अनुभव करें। ऐसी विचार-परंपरा, जो समय के साथ चलती है, लेकिन अपने मूल से कभी विच्छिन्न नहीं होती।

ऐसी परंपरा, जो आधुनिकता को स्वीकार करती है; लेकिन मनुष्य के भीतर के मूल्यों को विस्मृत नहीं करती। ऐसी परंपरा, जो विज्ञान का सम्मान करती है; लेकिन विवेक और नैतिकता को विज्ञान से अलग नहीं करती। ऐसी परंपरा, जो

आध्यात्मिकता को जीवन से जोड़ती है और जीवन को लोक-मंगल से।

इस दृष्टि से अखण्ड ज्योति का भविष्य केवल उसके प्रकाशन से नहीं, बल्कि उसके पीछे खड़ी सामूहिक आस्था से जुड़ा है। इस यात्रा में पाठकों का सहयोग केवल आर्थिक सहयोग नहीं है। यह विचारों की उस मशाल को आगे बढ़ाने में सहभागिता है जिसे पूज्य गुरुदेव ने अपने जीवन से प्रज्वलित किया था। आज इस परिवर्तन की घोषणा करते हुए मन भारी है, लेकिन उसी के साथ भीतर एक दृढ़ विश्वास भी है कि यह ज्योति अपनी यात्रा जारी रखेगी।

हमारा प्रयास रहेगा कि इस परिवर्तन के बाद भी प्रत्येक अंक के पीछे वही निष्ठा रहे, वही गहन अनुसंधान हो, वही आत्मीय भाव हो और वही साधनात्मक गंभीरता हो; क्योंकि हम जानते हैं कि पाठक के हाथ में पहुँचने वाला प्रत्येक पृष्ठ केवल कागज नहीं है। उस पर किसी का समय लगा है। किसी का चिंतन लगा है। किसी की साधना लगी है। किसी की भावनाएँ लगी हैं और सबसे बढ़कर, उस पर पूज्य गुरुदेव के विचारों की वह अग्नि अंकित है, जो दशकों से मनुष्य के अंत:करण को प्रकाशित करती रही है।

यही अग्नि अखण्ड ज्योति की वास्तविक पहचान है और यही हमारा संकल्प है कि यह ज्योति अखण्ड बनी रहे। ❑

चंदा वृद्धि-सूचना

सरकारी नीतियों एवं डाकविभाग के नियमों के परिवर्तन से पोस्टेज बढ़ने के कारण भारी मन से अब जनवरी, 2027 से अखण्ड ज्योति का वार्षिक चंदा निम्न प्रकार करना पड़ रहा है—

	वार्षिक	वार्षिक विदेश में (हवाई डाक से)
1. अखण्ड ज्योति हिंदी	500/-	5200/-
2. अखण्ड ज्योति अँगरेजी	270/-	2500/-

पाठकों को अखण्ड ज्योति न मिलने की शिकायतें बनी रहती थीं। अब सभी को ट्रेकेबिल सुविधा सहित (लगभग रजिस्टर्ड जैसी) सुविधाएँ उपलब्ध होंगी।

अब 20 वर्षीय सदस्यता का प्रावधान नहीं रहेगा। पूर्व में बने सदस्यों को यथावत् पत्रिका जाती रहेगी।

इस वृद्धि का प्रभाव सदस्य संख्या पर पड़ सकता है। सभी परिजनों से निवेदन है कि इस संभावित संकट में सदस्य संख्या बढ़ाने का पूर्ण प्रयास करें।

इस शताब्दी वर्ष में हम सबका पुनीत कर्त्तव्य है कि पूज्य गुरुदेव, वंदनीया माताजी की संदेशवाहक पत्रिका अखण्ड ज्योति को जन-जन तक पहुँचाकर गुरुसत्ता के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करें।

ज्योति पर्व

ज्योति पर्व ज्योतित हो ऐसा, कहीं तमस् न शेष रहे।
ज्ञानज्योति उभरे अंतस् में, बस आलोक अशेष रहे॥

दीपों का संदेश यही है, अंतस् का अज्ञान मिटाएँ।
ज्ञान-सूर्य की प्रखर प्रभा से, जीवनलक्ष्य सहज ही पाएँ॥
हो सविता की ध्यान-धारणा, नहीं क्लेश का लेश रहे!
ज्ञानज्योति उभरे अंतस् में, बस आलोक अशेष रहे॥

विकसित हुई पात्रता जितनी, बस उतना ही उसे मिला।
पूजनीय वह ही दीपक-सा, जो तिल-तिल कर स्वयं जला॥
त्रितापहारी युगऋषि का यह जगव्यापी संदेश रहे।
ज्ञानज्योति उभरे अंतस् में, बस आलोक अशेष रहे॥

कैसा भी कोई भी आया,उस पर अपनापन बरसाया।
देकर अपनी अंतर्ज्वाला, दीप्तिमान अंगार बनाया॥
अखिल विश्वमानस में छाया, शुभ वासंती वेश रहे।
ज्ञानज्योति उभरे अंतस् में, बस आलोक अशेष रहे॥

बाती जलकर स्वयं हमें, इस जग की नश्वरता बतलाती।
भोग हमें ही भोग न लें, पल-पल हमको यह समझाती॥
दिव्य दीप की प्रखर प्रेरणा, जीवन में निःशेष रहे।
ज्ञानज्योति उभरे अंतस् में, बस आलोक अशेष रहे॥

दो मुट्ठी तंडुल देकर, दो लोक सुदामा पाते हैं।
सुनकर नवयुग की पुकार, सभी व्यग्र हो जाते हैं॥
सार्वभौम सद्गुरु चिंतन हो, शेष न देश-विदेश रहे।
ज्ञानज्योति उभरे अंतस् में, बस आलोक अशेष रहे॥

—चक्रेश पाण्डेय

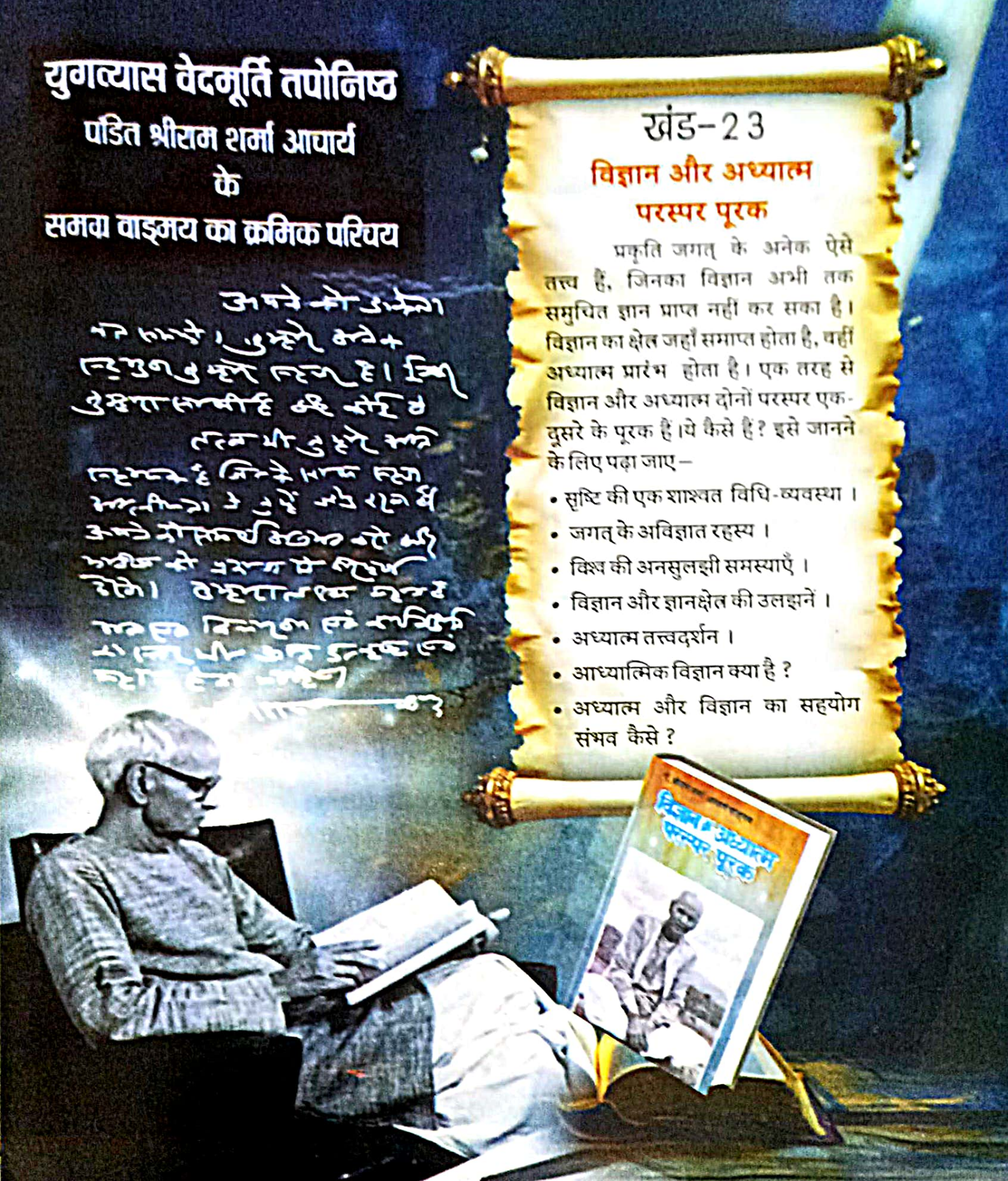
युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
के
समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

खंड-23

विज्ञान और अध्यात्म
परस्पर पूरक

प्रकृति जगत् के अनेक ऐसे तत्त्व हैं, जिनका विज्ञान अभी तक समुचित ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका है। विज्ञान का क्षेत्र जहाँ समाप्त होता है, वहीं अध्यात्म प्रारंभ होता है। एक तरह से विज्ञान और अध्यात्म दोनों परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं।ये कैसे हैं? इसे जानने के लिए पढ़ा जाए –

- सृष्टि की एक शाश्वत विधि-व्यवस्था ।
- जगत् के अविज्ञात रहस्य ।
- विश्व की अनसुलझी समस्याएँ ।
- विज्ञान और ज्ञानक्षेत्र की उलझनें ।
- अध्यात्म तत्त्वदर्शन ।
- आध्यात्मिक विज्ञान क्या है ?
- अध्यात्म और विज्ञान का सहयोग संभव कैसे ?



अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01 / 10 / 2026
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026



नेपाल में आई बाढ़ से प्रभावित परिवारों को भोजन, सुरक्षित आवागमन और अन्य आवश्यक सहायता उपलब्ध कराने के उद्देश्य से गायतीतीर्थ शांतिकुंज हरिद्वार एवं नेपाल के स्थानीय गायत्री परिजनों द्वारा त्वरित सहायता-सेवा कार्य ।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 **मोबाइल** — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039

ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org